राम की लड़ाई

लक्ष्मीनारायण लाल

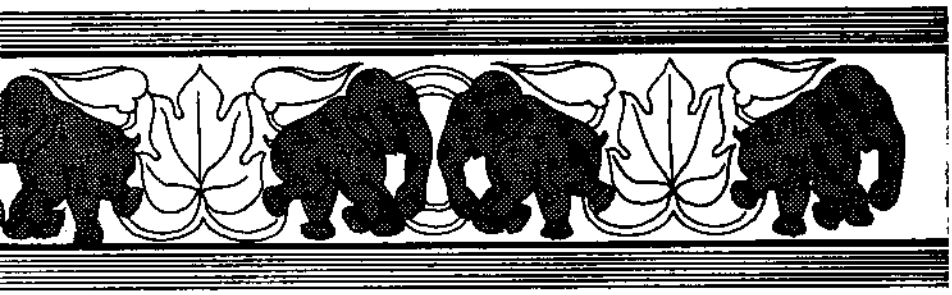

अम्बर प्रकाशन

राम की लड़ाई

अम्बर प्रकाशन
नई दिल्ली

अम्बर प्रकाशन

शैक्षिक प्रकाशक

८८८, ईस्ट पार्क रोड, करौल बाग,
नई दिल्ली-११०००५, (भारत)

राम की लड़ाई

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

'राम की लड़ाई' नाटक के अभिनय, प्रदर्शन, प्रकाशन, प्रसारण आदि किसी भी प्रकार के व्यावसायिक, अव्यावसायिक उपयोग के लिए लेखक की लिखित पूर्व-अनुमति अनिवार्य है।

पता : ५४ ए, एम० आई० जी० फ्लैट
पश्चिम विहार, नयी दिल्ली-११००६३

मूल्य : ७.५० रुपये केवल/द्वितीय संस्करण : अगस्त, १९८३ / कापीराईट : © डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल / प्रकाशक : अम्बर प्रकाशन, ८८८, ईस्ट पार्क रोड, करौल बाग, नई दिल्ली-११०००५ (भारत), / दूरभाष : (कार्यालय) ५२६९३३, ५१९४३३ (आवास) ५६२९१९, ५६१३२१ /
मुद्रक : मित्तल प्रिण्टर्स, के-१३, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

RAM KI LADAI : Lakshmi Narain Lal Rs. 7/50

अनुक्रमणिका

आधुनिक हिन्दी नाटक ७ से २२
'राम की लड़ाई' नाटक के बारे में २३ से २५
नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल
और उनकी कृतियों का परिचय २७ से २९
राम की लड़ाई १ से ७४

पहला दृश्य : ३ से २०
दूसरा दृश्य : २१ से २७
तीसरा दृश्य : २८ से ३२
चौथा दृश्य : ३३ से ४३
पाँचवाँ दृश्य : ४४ से ५०
छठा दृश्य : ५१ से ५५
सातवाँ दृश्य : ५६ से ६४
आठवाँ दृश्य : ६५ से ७२
नौवाँ दृश्य : ७३ से ७४

आधुनिक हिन्दी नाटक

[डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल]

जब हम नाटक अथवा रंगमंच को आधुनिक विशेषण से जोड़ते हैं तब हम उस तथ्य को रेखांकित करना चाहते हैं जो श्रेष्ठ नाटक और रंगमंच की आत्मा में सदैव विद्यमान रहा है--वह सत्य है अपने युग के यथार्थ से साक्षात्कार का। यह साक्षात्कार हर युग-काल में जिस संदर्भ और जितने आयाम से कोई नाटककार अपने परिवेश के साथ करता है उतने ही अर्थ में उस देश, काल और भाषा का नाटक और रंगमंच आधुनिक होता है।

भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी नाटक तथा रंगमंच के पहले कृतिकार थे। इनके काल में जो परिवेश इन्हें प्राप्त था वह था सामाजिक मान्यताओं के स्तर पर नए पुराने संघर्ष का ब्रिटिश राज्य अथवा अंग्रेजी संस्कृति बनाम हिन्दू सभ्यता और संस्कृति का। इन दोनों परिस्थितियों के बीच भारतेन्दु को अपना नाटककार व्यक्तित्व प्राप्त करना था। प्रकट है कि भारतेन्दु के ऊपर एक ओर संस्कृत नाट्य परम्परा का प्रभाव है तो दूसरी ओर ऐतिहासिक रोमांस का, तो तीसरी ओर रासलीला का, चौथी ओर नारी समस्या भी एक नए प्रसंग में विकसित होती है। अध्ययन करने पर भारतेन्दु का समूचा नाट्य साहित्य इन विभिन्न धाराओं का मनोरंजक समूह-सा लगता है।

इन नाटकों का प्रधान पक्ष शिल्प है कथ्य नहीं। कथ्य के स्तर पर इनके दो नाटक 'सत्य हरिश्चन्द्र' और दूसरा 'अन्धेर नगरी' ऐसे अवश्य हैं जिनका अध्ययन आधुनिकता के संदर्भ में कर सकते हैं। 'सत्य हरिश्चन्द्र'

अपने शिल्प में संस्कृत नाटक का शिल्प है, किन्तु अपने काव्य में यह नाटक हरिश्चन्द्र के चरित्र की उस करुणा को व्यक्त करता है जहाँ सत्य के पालन में मनुष्य को बाज़ार में दयनीय स्थिति में बिकना पड़ता है और मानवता के श्मशान पर अपने पुत्र के शव के सामने अपनी ही पत्नी से कफ़न के लिए कहना पड़ता है। यह १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के मनुष्य के संघर्ष की एक झाँकी है जो यथार्थ भी है और करुण भी! दूसरी ओर 'अन्धेर नगरी' में अपने समय के परिवेश पर गहरा और व्यंगात्मक प्रहार किया गया है।

भारतेन्दु के बाद प्रसाद ने नाटक भूमिका को एक साहित्यिक स्तर दे दिया और उसे 'आत्मानुभूति' से जोड़ दिया। इस तरह प्रसाद के द्वारा नाटक के क्षेत्र में बाहरी समाजालोचना व समाज-सुधार—इन सबसे बहुत गहरे मानवीय संघर्ष और उनके व्यक्तित्व की सार्थकता के प्रश्नों को जोड़ देने का कार्य किया गया। 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी'—ये तीनों नाटक मनुष्य के महत्त्वपूर्ण दस्तावेज हैं। इन स्तरों पर ये नाटक अपने अर्थ में आधुनिक हैं। इनका ऐतिहासिक परिवेश निश्चय ही तत्कालीन समस्याओं से उद्भूत है और वे तीनों नाटक ऐतिहासिक होते हुए भी समसामयिक हैं—इनके सारे चरित्रों के माध्यम से हम १९२९ से १९३६ तक के भारतवर्ष का सम्पूर्ण स्वरूप देखते हैं।

दूसरी ओर चन्द्रगुप्त के भीतर जो चारित्रिक संघर्ष है और जो उसमें द्वैत है उन दोनों से वह लड़ता-जूझता हुआ अपने-आपको नाटक के अन्त में पाता है, उतने अर्थ में वस्तुतः 'स्कन्दगुप्त' एक आधुनिक नाटक सिद्ध होता है। रंगमंच के स्वरूप में भी प्रसाद के नाटक बहुत ही सम्भावनाओं और रंग-शक्तियों से परिपूर्ण हैं। इन नाटकों का दोष केवल यह है कि ये अपने विस्तार में एक संवेदना से अधिक बाहरी तथ्यों को भी अपने में समेटे रहते हैं, किन्तु ये सारी समस्याएँ बहुत गौण रूप में नाटक से जुड़ी हैं और इनका मूल संवेदना से कोई महत्त्वपूर्ण योग नहीं है।

यह सच है कि हिन्दी क्षेत्र में लोक रंगमंच की परम्परा अबाध रूप से विद्यमान थी। रामलीला, कृष्णलीला, स्वांग, भगत, नौटंकी आदि सब थे।

पर इनका सम्बन्ध उस बदले हुए समय, युगबोध से कतई नहीं था, जैसे कि बंगाल में उनके परम्परागत लोकनाट्य 'यात्रा' में हुआ और उसमें से आगे पैदा हुई एक नाट्य परम्परा।

हिन्दी में उस नयी नाट्य-परम्परा की एक सार्थक तलाश भारतेन्दु का 'अन्धेर नगरी' नाटक है और यह एक तलाश भारतेन्दु ने कितनी लम्बी यात्रा तय करके की है। 'अन्धेर नगरी' कितनी ही परम्पराओं को अपने में पचाकर अपने समय में उत्पन्न सामाजिक जीवन का एक यथार्थ रूपक है जिसकी भाषा, रूपबंध और समूचा रंगमंच हिन्दी की अपनी मौलिक कृति है। पर इसके बाद यह परम्परा वहीं-की-वहीं रुक गई, और ठीक इसके विपरीत पारसी थिएटर विकसित होता रहा। विकसित इस अर्थ में कि यह समय के अनुसार राष्ट्रीय चेतना, धर्म और समाज के पुनरुत्थान की चेतना को अपना विषय बनाने लगा। इसलिए नहीं कि उसे इन विषयों में किसी प्रकार की स्वयं आस्था थी, बल्कि इसलिए कि उस काल का दर्शक-वर्ग वही विषय चाहता था और इसी भावना में वह रंगा था।

पर यह विषय भावना उतनी ही थी जितनी कि उस समय की अंग्रेज़ी हुकूमत की नज़र में कहीं खटके नहीं। प्रथम महायुद्ध के बाद से तीसरे दशक के अन्त तक, यह इतना काल पारसी थिएटर की चरम सफलता का काल है और हिन्दी भाषा क्षेत्र के लिए यह काल 'स्वदेशी आन्दोलन', 'असहयोग आन्दोलन', 'क्रान्तिकारी संघर्ष' का समय है। इसके जवाब में अंग्रेज़ी हुकूमत की ओर से क्रमशः 'रौलेट एक्ट', 'जलियाँवाला हत्याकांड', 'कम्युनल एवार्ड' और 'दमन' के अन्य क्रूर चक्र काल हैं।

ऐसी परिस्थिति में पारसी थियेटर को दोधारी तलवार पर चलना पड़ा। इन दोनों परस्पर विरोधी स्थितियों का हल पारसी थियेटर ने ढूंढ़ निकाला राष्ट्रीय चेतना, पुनरुत्थान की भावना पर इश्क, मेलोड्रामा, रोमानियत का चटक रंग चढ़ा देना। इसके बाद भी यदि कहीं राष्ट्रीय चेतना, भारत का गौरव, स्वदेश भावना, हिन्दुत्व दिखे, तो उसे अजीबो-गरीब सीन-सीनरियों, चमत्कारपूर्ण रंगमंचीय करिश्मों में इस तरह ढाँप

दिया जाए कि दर्शक उसी बाह्य से चमत्कृत रह जाए और इसके ऊपर गाने, रक्स, वगैरह की चाश्नी में सब कुछ अजीब ढंग से मीठा-मीठा कर दिया जाये।

इस प्रसंग में यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है कि जैसे-जैसे राष्ट्रीय चेतना हिन्दी भाषा और इसकी संस्कृति से जुड़ती गयी है, वैसे-वैसे पारसी कम्पनियों ने धर्मकथावाचकों (राधेश्याम), हिन्दी धर्म, पुराण और इतिहास को उसी निष्ठा से देखने वाले नारायण प्रसाद 'बेताब' को महत्व देना शुरू किया। शुद्ध हिन्दी भाषा और हिन्दी छंद, गीत और इतिहास, पुराण की सीधी कथा। राष्ट्रीय भावधारा, हिन्दुत्वगरिमा, वतन की आबरू पर कुर्बान हो जाना। इसके कितने सारे उद्धरण पारसी नाटक में से दे दिए जा सकते हैं।

पर ये सारी भावनायें, उद्‌गार, उपदेश, भाषण के रूप में आये तिस पर भी इसे क्रमशः संतुलित किया (ढके रखा) मुहब्बत की दीवानगी ने, राजा बहादुर और खटपटसिंह की विदूषकी ने, सौभागचन्द, हरीदास मारवाड़ी चरित्रों, मिरासी, तबलची, तमाशबीनों के हास्य ने तथा चेता चमार, सत्ती गोपी के अति विषयांतर प्रसंगों ने।

बिलकुल ठीक इसी के समांतर इसी काल में जयशंकर प्रसाद अपने पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों में इसी पुनरुत्थान की भावना और राष्ट्रीय गौरव को किशोर मन की भावुकता और छायावादी कुहेलिका से ढक कर, उस पर अस्पष्टता का झीना-सा आवरण चढ़ा कर अभिव्यक्त कर रहे थे। यह अत्यन्त उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु ने ऐसा कहीं नहीं किया है। इसका कारण था कि प्रसाद के बिपरीत भारतेन्दु प्रत्यक्ष रंगमंच से जुड़े थे और स्वतन्त्र नाट्य-परम्परा के लिए संघर्षरत थे।

प्रसाद ने ठीक इसके विपरीत किया। उन्होंने नाटक का रूपबन्ध और रंगमंच का पूरा विधान सीधे पारसी थियेटर से ज्यों-का-त्यों ले लिया और पारसी थियेटर के विपरीत (प्रतिक्रिया स्वरूप) उन्होंने उसमें काव्यात्मकता, साहित्यिकता भर दी। उन्होंने तीन अंकों, अर्थात् चरमसीमा से आगे

'फलागम' (संस्कृत) और समाहार (डिनाउन्समेन्ट'—शैक्सपियर) तक सोचा, और उसी के अनुरूप कथा, चरित्र और अंकदृश्य योजना बनायी। और, तभी निर्देशक, अभिनेता और दर्शक की कल्पना, सृजन शक्ति को जगाता हुआ कई स्तरों पर अपने-आपको निर्मित और सम्पूर्ण करता है।

पारसी थियेटर का सारा रंगविधान प्रसाद के नाट्य विषय और भाव-बोध से बिलकुल विपरीत पड़ने के कारण, नाटककार प्रसाद की शक्ति को खंडित नहीं करता, उसे बिखेर देता है। पारसी थियेटर जैसे 'इश्क' और राष्ट्रीयता के दो विरोधी घोड़ों पर चढ़ा था, ठीक उसी तरह प्रसाद की समूची नाट्यकला पारसी थियेटर और 'आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति' के परस्पर विरोधी अश्वों पर आसीन थी। जहाँ सारा दृश्यत्व रंगे हुए पर्दों, सीन-सीनरियों और अभिनय से लेकर यांत्रिक प्रभावों तक सीमित है, वहाँ काव्य के लिए कल्पना और गहराई की कोई गुंजाइश नहीं हो सकती। वहाँ काव्य केवल संवाद में हो सकता है या गीतों में। यही प्रसाद के नाटकों में हुआ भी।

इतना ही नहीं प्रसाद के काव्यस्तर पर वही कथित, सूचित, पारिभाषित राष्ट्रीयता, नवोत्थान, समाज-सुधार का अतिस्वर छाया रहा।

दो परस्पर विरोधी रंग प्रवृत्तियों के प्रयोग के कारण, तथा नाटक में पाठ्य आग्रह के कारण विषय, कथा, चरित्र और अंकविधान के स्तर पर अनेक सीमायें और सामने आती हैं।

एक ओर प्रसाद ऐतिहासिक नाटक लिखने के पीछे प्राचीन भारत के मौलिक इतिहास के अन्वेषक होना चाहते थे, दूसरी ओर जैसे 'बेताब' और 'राधेश्याम' ने क्रमशः 'महाभारत' और 'वीर अभिमन्यु' में समूचे महाभारत का सार और पूरी अभिमन्यु गाथा कह डालना चाहा है—ठीक इसी तरह प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कंदगुप्त' में ऐतिहासिक कथाओं से दोनों कालों की समूची तत्कालीन सांस्कृतिक परिस्थितियों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है और इन्हें नाटक भी बनाना चाहा है। इसका फल यह हुआ कि इन दोनों नाटकों में 'वस्तुकाल' बहुत ही लम्बा हुआ है। ठीक वैसे जैसे 'बेताब'

के 'महाभारत' में। इस लम्बे काल से किस प्रकार नाटक को हानि पहुँचती है, यह इससे स्पष्ट हो जाता है कि जो लोग आरंभ में किशोर या युवा थे, उन्हें स्वभावतः अन्तः-प्रौढ़ या वृद्ध हो जाना चाहिये। पर नाटककार उन्हें वहीं रखता जाता है। और पच्चीस वर्ष बाद भी वे युवा ही रहते हैं। इतिहास और नाटक दोनों स्तरों पर ऐसी अनेक सीमायें और दोष सामने आते हैं।

पारसी थियेटर में दर्शक को लुभाने तथा पूरी कथा बताने के लिए एक से एक चमत्कारमूलक दृश्यों की अवतारणा की जाती थी। 'चन्द्रगुप्त' में भी ऐसे चमत्कारमूलक दृश्यों के मोह ने इसे रचनागत अराजकता से भर दिया है। ये नाटक को अनावश्यक रूप से अतिरंजना प्रधान बनाते हैं, और इसके काव्यतत्व को स्वभावतः तोड़ते हैं।

अंकों की शुरूआत 'रुस्तम सोहराब' के विधान की याद दिलाती है, पर इनके अन्त झाँकी (टैब्लो) विधान के अनुरूप होते हैं और 'बेताब' 'राधेश्याम' का प्रभाव सामने आता है। दृश्य, प्रवेश, प्रस्थान, काव्यव्यापार—इन सब पर 'हश्र', 'बेताब', 'डी० एल० राय', 'राधेश्याम' के परस्पर विरोधी प्रभाव उल्लेखनीय हैं। अन्ततः प्रसाद की कोई रंगशैली तभी स्पष्ट उभरकर नहीं आती।

लगता है प्रसाद ने अपनी इस रंगमंच सीमा को 'ध्रुवस्वामिनी' तक पहुँचते-पहुँचते स्वीकार किया है और 'ध्रुवस्वामिनी' में वे यथार्थवादी रंगमंच-शैली की ओर झुके हैं। ससे पहले के किसी भी नाटक में उन्होंने दृश्य-सज्जा या मंच दृश्य का इतना विधिवत् विधान नहीं दिया है। केवल 'स्कंधावार', 'राजप्रासाद', 'प्रकोष्ठ', 'श्मशान', 'युद्धस्थल' आदि एक शब्द से वे पूरे दृश्य का संकेत कर देते थे; पर यहाँ 'ध्रुवस्वामिनी' में उन्होंने बाकायदा दृश्यों का विधिवत् नाटकीय हेतु चयन किया है।

इन सब सीमाओं के बावजूद प्रसाद के नाटक की कुछ उपलब्धियाँ उल्लेखनीय हैं, जिन्हें उनकी रंगमंचगत सीमाओं से बेध कर प्राप्त किया जा सकता है।

काव्यतत्व, प्रमुख उपलब्धि है, जो नाटक को सही अर्थों में नाटक सिद्ध

करते हैं। इसी तत्व से मुख्यतः 'स्कंदगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' में एक अजब तरह का संमोहन है, जो आज तक बना हुआ है।

उन्होंने इतिहास पुराण को पारसी थियेटर के नाटककारों की तरह न देखकर उसे अपने समय से जोड़ा है और इस तरह उनकी रचना भी की है। अपने समय की समस्त राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक चेतना को उन्होंने अपने ढंग से छुआ है और उनको ऐतिहासिक मानवीय गहराइयों में ले गए हैं।

दृश्यत्व के साथ काव्यत्व को जोड़ने का प्रयत्न इसमें उल्लेखनीय है। इसलिए पारसी थिएटर को सर्वथा भूलकर या काटकर यदि कल्पना की आँखों से 'स्कन्दगुप्त' को देखा जाए तो एक महत्वपूर्ण नाटक और रंगमंच उससे उभरता है। ऐसा रंगमंच जो हिन्दू सौन्दर्यबोध, स्थापत्य, वस्त्र, रंग-रूप सबकी ओर सार्थक संकेत देता है।

उनके चरित्रों में कई आयाम हैं; जो उन्हें उनके परिवेश से जोड़ कर मानवीय और नाटकीय दोनों गुणों से मंडित करते हैं। उनमें गम्भीर संघर्ष छिड़ा है, ये चरित्र से व्यक्तिगत प्राप्ति की ओर बढ़ते सिद्ध होते हैं, और कभी-कभी तो वे सचमुच संगीत की अन्तिम लहरदार तान छेड़कर हमारे मानस में घर कर लेते हैं। 'स्कंदगुप्त', 'देवसेना' ऐसे ही अप्रतिम चरित्र हैं।

प्रसाद ने 'स्कंदगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' नाटकों में पारसी थिएटर से सर्वथा आगे, पूर्वा पर ध्यान दिया है और नाटक की कथावस्तु, चरित्र को ऐसे नाटकीय बिन्दु से उभारा है जहाँ से वर्तमान और पूर्ववर्ती घटनाओं और क्रियाओं से कलात्मक सम्बन्ध जोड़ते चलते हैं।

प्रसादोत्तर हिन्दी नाट्य और रंगमंच में जो पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और समस्या-प्रधान नाटक हैं वे आधुनिक नाटक के उल्लेखनीय उदाहरण नहीं हैं जितने कि प्रसाद के नाटक थे। क्योंकि प्रसाद में जो गौण था, आनुषंगिक था वही सारे तत्व आगे के नाटकों में नाटक के विषय बन जाते हैं।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान का स्वर लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण 'प्रेमी', सेठ गोविन्ददास में प्रमुख हो जाता है। हरिकृष्ण 'प्रेमी' के 'रक्षाबन्धन' में हिन्दू-मुसलमान की एकता को विषय बनाया गया है। वस्तुतः यह विषय समाज-सुधार का है नाटक का नहीं। इसी तरह मिश्र जी की 'नारद की वीणा', 'गरुड़ ध्वज' हिन्दू संस्कृति और उसकी श्रेष्ठता को व्यक्त करने वाले नाटक हैं। इसी तरह उदयशंकर भट्ट का 'अम्बा' और इस काल के अन्य ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटक आधुनिक नाटक के महत्वपूर्ण आन्तरिक तत्वों से शून्य हैं क्योंकि इनमें प्रत्यक्षतः सांस्कृतिक अध्ययन और तत्व अधिक हैं; मानवीय नियति और उसके यथार्थों का साक्षात्कार बहुत कम है। नाटक मूलतः नाटक होते हैं जो मानव, नियति और उसके संघर्ष के दर्पण होते हैं। नाटक कभी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक नहीं होते। प्रसादोत्तर इन सारे नाटकों में शिल्प की दृष्टि से भी कोई प्रयोग नहीं है, न इन नाटकों में इनका रंगमंच पक्ष ही प्रधान है। बल्कि हम यों कह सकते हैं कि प्रसादोत्तर युग के सारे नाटक अभिनय और रंगमंच परिप्रेक्ष्य में लिखे ही नहीं गये। ये सांस्कृतिक अध्ययन और पठन-पाठन के लिए तथा नाटकेतर उपलब्धियों के लिए अधिक लिखे गये।

जिस प्रकार नाटककार प्रसाद के भीतर भारत के अतीत के प्रति आस्था, कवि का भावुक व्यक्तित्व तथा पारसी थिएटर का रूपबंध और रंगविधान के स्तर पर प्रभाव और विषयवस्तु, भाषा, चरित्र आदि के प्रति गहरी प्रतिक्रिया, प्रमुख शक्तियों के रूप में कार्यरत थी, ठीक उसी प्रकार नाटककार मिश्र के भीतर प्रसाद की काव्यात्मकता के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया, पारसी थिएटर के प्रति तीव्रतर दुराव और इनके स्थान पर इब्सन के नाटकों के रंगविधान की स्वीकृति कार्य कर रही थी। इन्होंने सबसे पहले भावात्मकता के विरुद्ध बुद्धिवाद का स्वर बुलंद किया।

बुद्धिवाद से स्वभावतः व्यक्तिवाद को जोड़कर मिश्रजी ने व्यक्तिगत नैतिकता, सामाजिक नीतिनिर्वाह के क्षेत्र में बड़े ही निर्भीक और स्वतंत्र ढंग से सोचा। इन दोनों क्षेत्रों में सचाई जो है, जिस रूप में है, उसे तो वह

स्वीकार कर लेता है, लेकिन उस पर कितने बेठन चढ़े हैं, उसे कितने कपड़े और गहने पहनाये गये हैं, वह कितनी जंजीरों में बाँधी गई है, इन बातों को वह स्वीकार नहीं करता। 'बुद्धिवाद किसी तरह का हो, किसी कोटि का हो, समाज या साहित्य की हानि नहीं कर सकता।' बुद्धिवाद में 'शूगर-कोटेड' कुनेन की व्यवस्था है ही नहीं। वह तो तीक्ष्ण सत्य है, उसका घाव गहरा तो होता है लेकिन अंगभंग करने के लिए नहीं, मवाद निकलने के लिए, हमारी प्रसुप्त चेतना को जगाकर हमारे भीतर नवीन जीवन और नवीन स्फूर्ति पैदा करने के लिए।

इस बुद्धिवाद और व्यक्तिवाद के भीतर मिश्रजी ने नाटक सम्बन्धी जो मान्यताएँ बनायीं, उन्हें इन बिन्दुओं से देखा-पकड़ा जा सकता है।

- बुद्धि और तर्क के भीतर से ही यथार्थ की अभिव्यक्ति नाटक में हो सकती है, भावना या कल्पना से नहीं।
- यही और ऐसा ही यथार्थवादी नाटक, नाटक कहलाने का अधिकारी है। इन दोनों भावबिन्दुओं को देखने से प्रकट है कि यथार्थवाद की यह प्रेरणा इन्होंने इब्सन से ली।

पर 'इब्सन' के 'नाट्य' का यथार्थवाद वह नहीं है जो मिश्रजी ने ग्रहण किया—वह महज उसके यथार्थ का बाहरी ढाँचा है, जो ऊपर से 'समाज सुधार', 'समाजालोचन' और परम्परा के प्रति 'विद्रोह' सा दिखाता है। यह यथार्थ उतना ही नहीं है जो परस्पर बोलचाल की भाषा में (वाद-विवाद) प्रकट होता है या घर-गृहस्थी, कमरे या ड्राइंगरूम के परिवेश के भीतर से अपने को प्रत्यक्षतः प्रकट कराता दिखता है। वह यथार्थ नहीं महत्तर यथार्थ इन सब साधनों से कहीं आगे अप्रत्यक्ष रूप से विकसित, स्वनिर्मित होकर काव्यात्मक यथार्थ के धरातल पर जा पहुँचता है।

और बुनियादी सवाल यही उभरता है—मिश्रजी ने इब्सन से वह बाहरी यथार्थ ही क्यों ग्रहण किया?

दरअसल नाटक के रंगमंच की दुनिया एक अप्रत्यक्ष संसार है। यूँ यह प्रत्यक्ष तो सबसे ज्यादा है, पर नाटक का यह प्रत्यक्षीकरण अभिनेता,

निर्देशक, रंगशिल्पी की मध्यस्थता से मंच पर दर्शक के सामने होता है। यह एक विशिष्ट विधा ही नहीं, सब विधाओं से ज्यादा यह दूसरों से (दूसरी कलाओं, मनुष्य, कलाकार, अनुभव, सृजन) संयुक्त है।

पारसी थिएटर की प्रतिक्रिया में यही संपृक्तता पहले प्रसाद से टूटी और प्रसाद के बाद दोहरी प्रतिक्रिया से यह 'मिश्र', 'सेठ', 'प्रेमी' आदि के द्वारा तोड़ी गयी।

भाषा का अत्यधिक प्रयोग 'पारसी थिएटर और प्रसाद' दोनों में हुआ है। पारसी थिएटर में इसके अति प्रयोग के पीछे दो कारण थे—वहाँ अभिनेता एक ही बात को, भावना को दो तरह से दोहरे ढंग से कहता था—पहले वह दर्शक को बताता था, फिर वही स्वयं कहकर (मुख्यतः बहरे तबील और अन्य छंदों में) उसी का अभिनय करता था, दूसरे उसमें 'प्रचारक' का भी अत्यधिक हस्तक्षेप था, इसलिए भाषा का अराजक प्रयोग हुआ था। पर बुनियादी ढंग से इस भाषा प्रयोग में अभिनेता इसके भीतर विद्यमान था और साथ ही इसमें दर्शक भी शामिल था। अतएव भाषा का यह अति-प्रयोग रंगमंच में घुलमिल गया था। इसी के अनुरूप उसमें अतिरंजनाप्रधान चमत्कारमूलक घटनाएँ और कार्यव्यापार थे, इसलिए भी भाषा प्रयोग की वह अराजकता उसका अभिन्न अंग बन जाती थी। 'प्रसाद' में वही अभिनेता और दर्शकबोध पारसी थिएटर की तुलना में भाषा के भीतर से कुछ दूर छूट गया।

प्रसाद के बाद मिश्र, सेठ, प्रेमी के भाषा प्रयोग में वही अभिनेता और दर्शक अपेक्षाकृत गायब हो गए। इसके स्थान पर क्रमशः आ गए परस्पर वाद-विवाद करने वाले स्त्री-पुरुष (चरित्र नहीं) और 'पाठक'। और ये प्रचारक, कवि के स्थान पर तार्किक 'वकील' और 'बुद्धिवादी' लेखक हो गये। इस सृजन भूमिका पर, जब इन नाटककारों ने 'इतिहास', 'पुराण' की कथावस्तु और चरित्र लिये तो अपनी संस्कृति से स्वयं को जोड़ने के लिए 'इब्सन', 'प्रसाद', 'डी० एल० राय', 'पारसी थिएटर' सबको बुद्धि द्वारा

बेधते हुए सीधे ये भरतमुनि तक पहुँचे और अपने नाट्य का सम्बन्ध अपने पूर्वजों से जोड़ने लगे।

'असत्य को सत्य करने की यह विचित्र पद्धति शैक्सपियर के नाटकों तक अपने वेग से चलती रही। इब्सन ने शैक्सपियर के विरुद्ध प्रतिक्रिया की, पर हमारे दुर्भाग्य से द्विजेन्द्र लाल राय ने आँख मूँदकर शैक्सपियर का अनुकरण किया और वह अनुकरण देश की सभी भाषाओं पर छा गया। अब समय आया है जब इस देश के साहित्यकार अपने जातीय सिद्धांतों को समझें और अब से भी अपना सम्बन्ध अपने पूर्वजों से जोड़ें।

....'काव्येषु नाटकं रम्यम्'....भरत के इस कथन से यह निश्चित हो जाता है कि लोकवृत्ति का चित्रण, उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्यों के व्यापार क्रियाकलाप का निदर्शन नाटक या साहित्य का कोई भी अंग हो सकता है। लोकवृत्ति प्रकृति की बनाई है। कोई भी कवि कल्पना से उसका निर्माण नहीं करता।

ज़ाहिर है, जहाँ सारा रंगमंच भाषा का है वहाँ 'नाट्य' की कवि कल्पना से क्या मतलब ? वहाँ मतलब होगा ऐसी अतिनाटकीय स्थितियों से जहाँ जमकर—

आर्य-अनार्य, ब्राह्मण-शूद्र, धर्म और संस्कृति, दर्शन और कर्म, वेदांत और आनन्द, 'श्रेय और प्रेय', तथा व्यक्ति और समाज, नैतिकता बनाम अनैतिकता, राक्षस बनाम देवता, काम और सेक्स, आचार बनाम दुराचार, सामाजिक भ्रष्टाचार और व्यक्ति, हिंसा और सद्वृत्ति पर वाद और विवाद और बहस हो सके। जहाँ भाषा के तीखे बाणों से असत्य का पर्दाफाश किया जाए।

जहाँ हिन्दू धर्म की उदारता बनाम मजहबी तआस्सुब, हिन्दू-मुसलमान की एकता, नमाज और इंसानियत, छूत-अछूत साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयता, मराठे, राजपूत और हिन्दुत्व बनाम मुग़ल संस्कृति और 'राम बनाम गाँधी', कर्तव्य और अधिकार, ज्ञान और शांति, बौद्ध धर्म बनाम ईसाई, संस्कृति और वर्गभेद, पाश्चात्य बनाम भारतीय जीवनदृष्टि तथा समाज

और शोषण अछूतोद्धार, पाप-पुण्य, हिंसा-अहिंसा, सेवा और महत्व, व्यक्ति और दुःख विषयों पर समुचित प्रकाश मिले। उन्हें 'ज्ञान' भी हो और प्रकाश भी प्राप्त हो।

मैंने नाटकों की रचना निरुद्देश्य नहीं की है।....प्राचीन इतिहास हमारी शक्ति और दुर्बलता का दर्पण है। मैंने बार-बार यह दर्पण अपने देशवासियों के सम्मुख रखा है, ताकि हम अपने देश के अतीत को देखकर व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन से उन दुर्बलताओं को दूर करें, जिन्होंने हमें पराधीनता के पाश में बाँधा।

मानवीय विषयों और समस्याओं पर वाद-विवाद करने का तत्व इब्सन में खूब था, पर वहाँ हर नाटक में विषय एक ही था और समस्या भी एक ही ली जाती थी और नाटक का सारा यथार्थवादी ढाँचा, अपनी तमाम 'बातों', 'वाद-विवादों', 'तर्कों' के बावजूद रंगमंचीय 'कार्य' से उद्भूत होता था। यहाँ इन नाटकों में प्रत्येक नाटक में कई विषय, कई समस्याएँ होती हैं, और प्रत्यक्षतः इसका सारा रंगमंचीय विधान न किसी एक निश्चित कार्य से उद्भूत होता है, न किसी नाटकीय चरम परिणति से इनका कोई सम्बन्ध जुड़ता है।

मानवीय भावनाओं, क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं पर व्याख्या, टीका-टिप्पणी चरित्रों के मनोवेग को सूचित पारिभाषित करने की परम्परा संस्कृत नाट्य से लेकर शेक्सपीयर, पारसी थिएटर और 'प्रसाद' तक हमें मिलती है। पर वहाँ वह विशिष्ट तत्व उसके रंगमंच प्रकार और अभिनय शैली के भीतर से आता है। वहाँ सारे रंगमंच की प्रकृति ही ऐसी है।

पर यहाँ रंगमंच की प्रकृति और उसकी रंग-शैली परस्पर विरोधी शैलियों के तालमेल तथा गडमड के कारण और मूलतः इसमें जीवित रंगमंच बोध की विहीनता के कारण 'पाठ्य' तत्व प्रमुख हुआ। और उसमें भी संस्कृति, इतिहास, जीवनादर्श जैसे भारी-भरकम विषयों का भार पड़ा। फलतः यहाँ सब कुछ मूल रूप से 'कहा गया', 'लिखा गया', 'बताया गया', 'विचार विनिमय हुआ'—'जिया' और 'रचा' नहीं गया।

पारसी थिएटर या पश्चिमी ड्रामा के दबाव और प्रतिक्रिया स्वरूप और अपनी रंगआस्था के फलस्वरूप 'भारतेन्दु' और 'प्रसाद' में रंगमंच और अभिनय शैली की जो तलाश है, प्रयत्न है, वह यहाँ सर्वथा लुप्त है। यहाँ सारा इतिहास संस्कृति, जीवनादर्श, राष्ट्रीयता, व्यक्ति समाज के विचार स्तर पर है।

इन नाटककारों के नाट्यचरित्र कर्म करने की अपेक्षा बोलते ज्यादा हैं। पारसी थिएटर में चरित्र बोलते भी थे, और यही कार्य भी करते थे। वहाँ वस्तुतः 'कार्य-कथन' और 'कार्य-संपादन' दो धरातलों पर, उस रंग-मंच प्रकृति के अनुकूल प्रस्तुत होता था। 'कथन', संभाषण', कल्पना जगाने, सूचना देने के उद्देश्य से और वही कार्य-संपादन 'दृश्यत्व' के लिए होता था। अर्थात् एक ही बोध को शब्द से लेकर कार्य तक गतिमान करना, चर्चित देखना, ताकि उसमें मानवीय गति, कार्य-बोध पैदा हो।

पर यहाँ 'बोलना' प्रायः वाद-विवाद, मानसिक संघर्षों के सूचनार्थ और ज्ञान-प्रदर्शन के स्तर पर होता है। इसलिए यहाँ नाट्य संप्रेषणीयता अपेक्षाकृत 'पाठ्य' के एक ही स्तर पर होती है। यहाँ अनेक दृश्यों के अभि-नय बल्कि कुछ संपूर्ण नाटकों के अभिनय केवल बैठकर ही, बिना उठे, घूमे ही किया जा सकता है।

यहाँ चरित्र—ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक सभी प्रकार के नाटकों में अपने संघर्षों को अनुतप्त भाषा, दग्ध वाक्यांशों, आश्चर्यजनक संभाषणों, तीव्र वाद-विवादों द्वारा भी प्रकट करते हैं। जैसे प्रायः चरित्र पाठकरूपी न्यायाधीश और जूरी (दर्शक) के सामने विचारों के विविध कठघरों में खड़े हो वकील की तरह परस्पर बहस कर रहे हों और अपने विश्वासों, स्थापनाओं के लिए नजीरें, गवाहियाँ, उक्तियाँ, उद्धरण आदि पेश कर रहे हों। इसी का एक फल यह भी है कि इन सभी नाटकों में एक-से-एक सूक्तियों, आप्तवाक्य, सूत्रवचन और महावाक्य भरे पड़े हैं। इसे निश्चित ही 'बुद्धि' और 'भावना' प्रयोग का फल ही कहा जा सकता है।

भाषा रंगमंच के कारण इन नाटकों में विषय, प्रस्ताव, थीसिस, प्रबंध की भूमि खूब स्पष्ट होकर सामने आयी है।

'प्रसाद' जहाँ पारसी थिएटर की प्रतिक्रिया और अपनी आस्थावश भारत के इतिहास की वास्तविकता पर बल दे रहे थे, और इससे उस पूरे काल की सांस्कृतिक स्थिति नाटक में झलक आती थी—ठीक इससे आगे अब नाटक ऐतिहासिक पौराणिक न होकर विशुद्ध, 'सांस्कृतिक' होने लगे, अपने कथ्य और उद्देश्य इन दोनों धरातलों से।

हर नाटक एक पूर्व निश्चित, निर्धारित प्रस्ताव, थीसिस या प्रबन्ध मूल्य पर आधारित हुआ।

वस्तुतः ये सारे नाटककार मानववादी थे। राष्ट्रीय संग्राम और पुनरुत्थान की भावना से बहुत नज़दीक से जुड़े थे। अतएव इनमें हर बिन्दु पर आदर्श और यथार्थ, परम्परा और विद्रोह, पुराना और नया के बीच इनके निश्चित विश्वास, भावनाएँ तथा विचार थे। उन्हीं को ये लोग नाटक में विषय-वस्तु बनाते थे। उसी को अनेक तर्कों और उपायों से सिद्ध करते और खण्डित-मण्डित कर अपने एक पूर्व निश्चित हल पर पहुँचते थे। यही कारण है कि इन सभी नाटककारों की नाट्य-रचनाएँ पठन-पाठन, ज्ञान-बुद्धि और तर्कों पर खड़ी हैं। अनुभूति और व्यंजना पर नहीं। 'भाषा-प्रयोग'की प्रकृति से स्पष्ट है कि ये सभी अपने एक निश्चित विचार, स्थापना, प्रबन्धबोध के चारों ओर भाषा-संवाद का मकड़ी जाल बुनते रहते हैं। इस बनावट में सर्वत्र वही बुद्धि, भावना और तर्क के फन्दे मिलेंगे।

तभी यहाँ हर नाटक का आरम्भ एक विचार, एक प्रस्ताव, एक समस्या का 'आरम्भ' है और बीच का सारा भाग उस समस्या पर विचार-विनिमय के घात-प्रतिघात का मध्यभाग है और अन्त उस विचार, प्रस्ताव और उस समस्या की समाप्ति, हल या उपसंहार का है। यहाँ नाटक की समस्या 'इब्सन', 'शैक्सपियर', 'प्रसाद' की तरह अपने पूर्व पर नहीं टिकी होती, न वह भविष्य के लिए छोड़ ही दी जाती है, वरन् प्रस्ताव, प्रबन्धबोध के अनुरूप हर नाटक के साथ समस्या शुरू होती है और उसके अन्त में वह समस्या

समाप्त हो जाती है।' मिश्रजी और प्रेमी इसमें अत्यन्त कुशल हैं। सेठजी आदि और अन्त के बारे में उतने निश्चित और स्पष्ट नहीं हैं, इसके लिए इन्होंने अपने नाटकों में 'उपसंहार' का सहारा लिया है; ताकि एक शिक्षक, नेता, सुधारक, बुद्धिजीवी के चिन्तन का प्रभाव पैदा हो, और समस्या कहीं से भी शेष न रह जाए।

इन नाट्य तथ्यों का अन्ततोगत्वा प्रभाव इनके नाट्य विधान पर पड़ा है। इस प्रसंग में सर्वाधिक उल्लेखनीय तत्व वह है कि जहाँ नाटक का सारा विधान बुनियादी तौर पर नाटक की अपेक्षा कथात्मक रंगविधान के समीप आ गया है।

कथा और चरित्रविधान में यह इतिवृत्तात्मकता—आदि, मध्य और अन्त बल्कि उपसंहार तक फैली हुई है, और नाटकीय गति में यह घटनात्मक और भावुकतापूर्ण कार्यों की परिसमाप्ति में।

इस तथ्य की पहचान इन नाटकों के अंकविधान और दृश्योजना से होती है चाहे सांस्कृतिक ऐतिहासिक नाटक हो, चाहे सामाजिक, अंक अथवा दृश्यविधान बिल्कुल कथा साहित्य सा (पाठ्य) होता है। शुद्ध पाठकों को ध्यान में रखकर दृश्य यहाँ लिखे गए हैं, वर्णित एवं कथित है। रंगमंच को ध्यान में रखकर नहीं।

जगदीशचन्द्र माथुर के 'कोणार्क' नाटक से आधुनिक नाटक और रंगमंच की परम्परा फिर से उदित होती है। आधुनिक बोध में वर्तमान और भूत (इतिहास) के बीच जो व्यवधान उपस्थित होता है उसे कलात्मक सेतु द्वारा जोड़ना तथा अतीत के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान को अभिव्यक्ति देना एक महत्वपूर्ण लक्षण है। दूसरी ओर 'कोणार्क' के द्वारा नाटक के स्तर को आंतरिक अनुभूति और काव्य-स्तर से जोड़ देना, रंगमंच पक्ष के तत्वों का समन्वय कर एक नया रंग प्रयोग करना—ये सारे लक्षण तथा विशेषताएँ 'कोणार्क' की हैं! 'कोणार्क' की समूची संरचना में मन्दिर के गिरने का कार्य है, उस पर रेडियो-शिल्प का अमिट प्रभाव है। रेडियो के इस तत्व के

नाटक के अन्तिम भाग को रंगमंच के स्तर से निर्बल बनाया है, यह सत्य स्पष्ट है।

स्वतन्त्रता के बाद आधुनिक हिन्दी-नाटक और रंगमंच का महत्वपूर्ण चरण प्रारम्भ होता है। परम्परा, प्रयोग, प्राचीन और नवीन, पूर्व और पश्चिम इन सब रंग-दृष्टियों का सम्यक् अध्ययन प्रारम्भ हुआ। इससे भी आगे व्यावहारिक नाट्य प्रशिक्षण, रंग-अध्ययन और प्रस्तुतीकरण के क्षेत्र में व्यावहारिक कार्य शुरू हुए। हिन्दी-क्षेत्र के प्रमुख नगरों में संस्कृत, अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के नाटक खेले जाने लगे तथा नाटककार पहली बार रंगमंच से व्यावहारिक क्षेत्र में आया तथा अभिनेता रंग-शिल्पी और दर्शक के बीच बैठकर कार्यरत हुआ। इस व्यापक परिवेश और रंग-चेतना के भीतर से कई महत्वपूर्ण शक्तिशाली आधुनिक नाटक हिन्दी में प्रयुक्त हुए। इन सभी नाट्य-कृतियों में अभूतपूर्व शक्ति यह है कि इनमें रंगमंच पक्ष और साहित्य पक्ष, दोनों अपने श्रेष्ठ बिन्दुओं पर प्रतिष्ठित हैं और इन सब में व्याप्त-जीवन बोध और रंग-दृष्टि आधुनिकता के अनेक संदर्भों में सार्थक है।

●●

'राम की लड़ाई' नाटक के बारे में

सवाल आज़ादी का

रामगुलाम अपने जीवन के ३६ साल पूरा कर ३७वें साल में प्रवेश कर रहा है। लोग कहते हैं कि जिस दिन वह पैदा हुआ था उसी दिन उसके माँ-बाप भी गुलामी से आज़ाद हुए थे। रामगुलाम बड़ा हुआ तो उसे बताया गया वह आज़ादी की सन्तान है।

लेकिन रामगुलाम अभी भी आज़ादी की खोज कर रहा है। कहाँ है आज़ादी।

नेता दौरे पर आते हैं और रामगुलाम को समझाते हैं—आजादी आने के पहले कानून सात-सुमन्दर पार विलायत से बनकर आता था और हमारे सिर पर सवार हो जाता था। आज कानून हम खुद बना रहे हैं, दिल्ली में बैठकर। 'हम' कौन हैं? 'हम तुम्हारे प्रतिनिधि'। तुमने अपनी सारी सत्ता हमें सौंप दी है और उस सत्ता के सहारे हम राज चलाते हैं। यानी दरअसल तुम राज चलाते हो। ये अफ़सर-हाकिम हुकम हमारा मानते हैं, लेकिन सेवक तुम्हारे हैं। सरकार तुम्हारी है, राज तुम्हारा है।

लेकिन रामगुलाम को नेताजी की बात समझ में नहीं आती। वह टुकुर-टुकुर देख रहा है—आजादी आयी तो कौन-सा कानून बदला? आज भी पुलिस आती है और उसे पकड़कर उसी दफ़ा में बन्दकर देती है जिस धारा में उसके बाप, दादा और परदादा को सन् १९३५, सन् १९१२ या सन् १८८९

में बन्द कर देती थी। उसी कानून से मुकदमा चलता है और वैसे ही सज़ा होती है। यह कहाँ का न्याय है कि आज़ाद रामगुलाम पर उसी दफ़ा में मुकदमा चले जिसको अँग्रेज़ों ने अपने राज को मजबूत करने के हिसाब से बनाया और उसका इस्तेमाल किया? तब हमारी यह आज़ादी कैसी है।

रामगुलाम दस दर्जा तक पढ़ा है? क्या पढ़ा? वही जो मैकाले साहब बना गए थे। उस पर भी 'रामगुलाम बाबू' कहलाने का भूत सवार हुआ और चार-छः साल बाबू बनने की कोशिश में बीत गए। जहाँ जाता था वहीं पता लगता था कि वहाँ तो बाबू की कुर्सी के उम्मीदवारों की लम्बी लाइन लगी है और वह लाइन बढ़ती ही जा रही थी। लाइन खिसकती नहीं थी। जब कोई कुर्सी खाली होती थी और लाइन के आगे बढ़ने की उम्मीद नज़र आती थी तब किसी नेता या हाकिम का नज़दीकी चील की तरह झपट्टा मारता था और कुर्सी को लेकर उड़ जाता था। आखिर रामगुलाम निराश होकर लाइन से अलग हो गया। यों कहें कि लाइन छोड़ने के लिए मजबूर हो गया और मेहनत-मज़दूरी करने लगा। रामगुलाम की बीवी भी मेहनत-मज़दूरी करती है। बेटा पढ़ता भी है और मज़दूरी भी करता है। दो जून की रोटी कभी मिलती भी है और कभी नहीं भी मिलती है। लेकिन रामगुलाम आस लगाए बैठा है। किसकी आस लगाकर रामगुलाम बैठा है?

वैसे उसको आस दिलाने हर पाँचवें साल लोग आते हैं। सपने दिखाते हैं, जो उसके सपनों से भी बड़े, बहुत बड़े, होते हैं। लोग खाता खोलकर दिखाते हैं कि देखो, गाँव-जवार-मुल्क कितना आगे बढ़ गया है। रामगुलाम हर साल बहीखातों में रकमों के आगे बढ़ते शून्यों को देखता है। लेकिन रामगुलाम का अपना खाता जहाँ का तहाँ है। सरकारी खाते की रकम में से उसको हिस्सा मिलता है शून्य। रामगुलाम अपने अगल-बगल देखकर अपने ही जैसे 'शून्य' के मालिकों की गिनती करता है तो देखता है कि उनकी तादाद कल से बढ़ गई है। तब सरकारी खाते में दिखाई गई यह रकम कहाँ चली जा रही है?

रामगुलाम देखता है कि उसके ऊपर उसके मालिकों की पकड़ मजबूत होती जा रही है, अफसर हाकिमों की अकड़ बढ़ती जा रही है। वह इधर-उधर हिल नहीं सकता। जिधर उसको कहा जाएगा उधर ही चलना है, जो उसको दिया जाएगा वही उसको खाना-पहनना है, जो काम बताया जायेगा वही उसको करना है। आवाज़ करना मना है, क्योंकि आवाज़ सुन कर सरकार रूपी साँड बिदकता है और सींग तानकर मारने दौड़ता है—इसलिए जान को सही-सलामत रखने के लिए यह निहायत ज़रूरी है कि साँड तो चुपचाप खेत में चरने दिया जाए।

इतने पर भी रामगुलाम चैन से नहीं बैठ सकता। लोग आकर उसको भड़काते रहते हैं कि देखो, अमुक सूबे का, अमुक बोली का, अमुक धरम का, अमुक पेशे का दूसरा रामगुलाम तुम्हें गुलाम बनाना चाहता है। इसलिए उससे लड़ो। रामगुलाम कभी-कभी तैश में आकर दूसरे रामगुलाम से लड़ जाता है और लहूलुहान होने के बाद जब होश में आता है तब देखता है कि दोनों रामगुलाम एक ही कैदखाने में बन्द हैं। दोनों को नकेल डाल दी गई है और दोनों की नकेल एक ही हाथ में है। जब दोनों रामगुलाम उस हाथ से पूछते हैं कि तुम कौन हो तो जवाब मिलता है—'हम तुम्हारे सेवक, तुम्हारे गुलाम'। रामगुलाम अपने गुलामों की गुलामी में बँध गया है।

रामगुलाम आज़ाद कैसे होगा? जैसे-जैसे रामगुलाम बड़ा होता गया वह अपने राम से दूर होता गया। पैरों के नीचे की धरती खिसकती गयी और वह हवा में दूसरों की लटकाई हुई रस्सी पकड़े लटकता रहा और हर क्षण, हर पल डर से थर्राता रहा कि कब रस्सी हाथ से छूट जाए या अचानक खींच ली जाये और वह धड़ाम से गिर पड़ेगा।

अब इस रस्सी का दूसरा छोर जिनके हाथ में है—वे कहलाते हैं उसके सेवक, उसके गुलाम यानी वह गुलामों का गुलाम है।

रामगुलाम आज़ाद हो सकता है, बशर्ते वह गुलामी छोड़े। अपने राम को पहचाने और अपने राम से जुड़े—वही राम जिसका नाम लेते-लेते उस का बापू अपने सपनों की धरोहर साकार करने के लिए उसके हाथों में सौंपकर इस दुनिया से विदा हो गया।

• •

नाटककार, लक्ष्मीनारायण लाल और उनकी कृतियों का परिचय

लक्ष्मीनारायण लाल आधुनिक हिन्दी साहित्य के परम महत्वपूर्ण नाटककार, कथाकार और साहित्य के विभिन्न अंगों के मर्मज्ञ और कला जीवन के चिन्तक हैं। इन्होंने मौलिक साहित्य सृजन के साथ-ही-साथ मौलिक जीवन के चिन्तन में महत्वपूर्ण योग दिया है।

जयशंकर 'प्रसाद' के बाद मोहन राकेश और लक्ष्मीनारायण लाल ही वे दो नाटककार हुए हैं जिन्होंने सही और सम्पूर्ण अर्थों में हिन्दी नाट्य को आधुनिक बनाया। विशेषकर लाल का नाम इसलिए सर्वाधिक उल्लेखनीय है कि इन्होंने अपने नाटकों द्वारा एक ओर भारतीय रंगमंच की जीवंत परम्पराओं, प्रेरणाओं को अपने नाट्य लेखन में नए संदर्भ दिए और दूसरी ओर इन्होंने भारत के 'नाट्य' को, उसके रंगमंच की प्रकृति को गहराई से समझ कर देखा है। इन्होंने भारतीय और पाश्चात्य नाट्य के समन्वय के विश्वास का खण्डन किया है। इनका कहना है कि पूर्व और

पश्चिम का कभी भी समन्वय नहीं हो सकता, विशेषकर कला और साहित्य सृजन के क्षेत्र में।

जीवन परिचय : लक्ष्मीनारायण लाल का जन्म चार मार्च उन्नीस सौ सत्ताइस में उत्तर प्रदेश के बस्ती ज़िले के एक गाँव—जलालपुर में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के स्कूल में और हाई स्कूल, इण्टरमीडियट शिक्षा बस्ती शहर में प्राप्त की। प्रयाग विश्वविद्यालय से हिन्दी में (१९५०) एम०ए० और '**हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि**' पर सन् बावन में डाक्ट्रेट।

इसके बाद प्रयाग विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय के कालेजों में अध्यापक होकर विश्वविद्यालय की उच्चस्तरीय शिक्षा और अनुसंधान कार्य में महत्वपूर्ण योग दिया। इस बीच कुछ दिनों के लिए आकाशवाणी में ड्रामा प्रोड्यूसर। उन्नीस सौ चौसठ में विश्व नाटक सम्मेलन रूमानिया में भारतवर्ष की ओर से अकेले नाटककार के रूप में प्रतिनिधित्व किया। नेशनल ग्रीक थियेटर, एथेन्स में आमन्त्रित किए गए।

इलाहाबाद में नाट्य केन्द्र स्कूल आफ़ 'ड्रामेटिक आर्ट्स' की स्थापना और इनके द्वारा उसके संचालन और निर्देशन ने हिन्दी क्षेत्र में नाटक और रंगमंच के प्रति लोगों में गहरी रुचि पैदा की। अनेक अभिनेता, निर्देशक 'नाट्य केन्द्र इलाहाबाद' से रंग संस्कार और प्रशिक्षण लेकर हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में कार्यरत हुए।

दिल्ली में 'संवाद' रंगमंच संस्था का निर्माण कर और दिल्ली विश्वविद्यालय में एम० ए० हिन्दी के पाठ्यक्रम में नाट्यक्रम और रंगमंच का प्रशिक्षण और अध्यापन कर डा० लाल ने राजधानी में गम्भीर कार्य किया।

कृतियाँ

'मादा कैक्टस' नाट्य-कृति के साथ लाल ने हिन्दी नाट्य क्षेत्र में पदार्पण किया। इसके पूर्व कुछ एकांकी लिखकर अपने विद्यार्थी जीवन से ही इन्होंने लोगों का ध्यान आकृष्ट किया—विशेषकर डाक्टर रामकुमार वर्मा वृन्दावन लाल वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का

ध्यान। विद्यार्थी जीवन में लिखे हुए वे एकांकी नाटक क्रमशः 'ताजमहल के आँसू' और 'पर्वत के पीछे' एकांकी संग्रहों में संग्रहीत हैं।

नाट्य केन्द्र 'इलाहाबाद' के जीवन काल में 'सुन्दररस', 'रातरानी', 'दर्पन' और 'रक्त कमल' नाटकों की रचना की। ये नाटक पूरे हिन्दी क्षेत्र में प्रस्तुत होने लगे। कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली के प्रसिद्ध नाट्य संस्थाओं जैसे अनामिका (कलकत्ता), थियेटर यूनिट (बम्बई) आदि ने इन नाटकों को प्रस्तुत किया।

दिल्ली के जीवन काल में क्रमशः 'कलंकी', 'मिस्टर अभिमन्यु' 'सूर्यमुख', 'कर्फ्यू', 'अब्दुल्ला दीवाना', 'एक सत्य हरिश्चन्द्र', 'व्यक्तिगत', की रचना की। ये नाटक 'नेशनल स्कूल आफ़ ड्रामा', 'अभियान' और 'यात्रिक' जैसे प्रसिद्ध रंगदलों द्वारा खेले गये। इन नाटकों के अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुए और इस तरह पठन-पाठन और प्रदर्शन इन सभी स्तरों से लक्ष्मीनारायण लाल अखिल भारतीय स्तर के परम महत्वपूर्ण नाटककार के रूप में सर्वत्र स्थापित हुए। १९७७ में राष्ट्रपति द्वारा संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और १९७९ में साहित्य कला परिषद्, दिल्ली प्रशासन द्वारा सम्मानित किए गए।

मौलिक नाट्य रचना के साथ-ही-साथ रंगमंच प्रदर्शन, निर्देशन से गहरे रूप में सम्बन्ध रहने के कारण डा० लाल ने रंगमंच अनुसंधान क्षेत्र में तीन महत्वपूर्ण ग्रंथ दिए—'रंगमंच और नाटक की भूमिका', 'पारसी हिन्दी रंगमंच', 'हिन्दी रंगमंच और नाटक'।

उन्नीस सौ सत्तर में दिल्ली विश्वविद्यालय की नौकरी छोड़कर कुछ ही दिनों 'नेशनल बुक ट्रस्ट' में सम्पादक की नौकरी से त्यागपत्र देकर गत् वर्षों से डा० लाल लेखक हैं। नाटक के अलावा कथासाहित्य, आपकी औपन्यासिक कृतियों में 'मनवृन्दावन', 'प्रेम अपवित्र नदी', 'हरा समन्दर गोपी चन्दर', बहुत प्रसिद्ध हैं।

• •

राम की लड़ाई

•

चरित्र और पात्र

रामगुलाम	राम
रमई काका	जनक
सरजू बाबा	विश्वामित्र
हीरा	लक्ष्मण
बिमला	जानकी
शाहजी	वाणासुर
चीलरसिंह	मगध-नरेश
नेताई	रावण
गपोले	परसुराम-पहला
लखपतिया	काशी-नरेश
मालती	सखी
शान्ती	सखी
कालू	मसखरा
नेउर	कश्मीर-नरेश
गड़बड़सिंह	परसुराम-दूसरा

पहला दृश्य

(लीला शुरू होने से पहले—सामने मंच पर लोग, गायक, वादक, अभिनेता आदि खड़े हैं। संगीत उठता है। लोग गाते हैं।)

राम की लड़ाई आयी
हे भाई, हे भाई।
टूटी धनुइयाँ है
छोटे-छोटे हाथ हैं
माता बिछोह है
भालू-बन्दर साथ हैं।
एक रथ पर चढ़ा
एक पैदल जायी
राम की लड़ाई आयी
हे भाई, हे भाई।
एक लंकापति
दूसरा वनवासी
एक जानकी-हरनकर्ता
दूसरा जानकी-पति, भाई
हे भाई, हे भाई।
राम की लड़ाई आयी
हे भाई, हे भाई।

(बीच में अचानक)

मसखरा : मति करो ज्यादा लीला की गवाई।
हम पंचन से पंचन कै परिचय कराई ॥
रमई काका जनक बने हैं।
आहा, कैसे बने-ठने हैं ॥
विश्वामित्र बने हैं सरजू बाबा।
अरे शोर किया तो डंडा खाबा ॥
रामगुलाम बना है राम···

(सब गाते हैं)

सब : रामगुलाम बना है राम।
रामगुलाम बना है राम ॥

मसखरा : विश्वामित्र ने किया इशारा।
खर-दूषण को इसने मारा ॥
अब रावण, वाणसुर, अहिरावण को मारने के लिए इसे चाहिए शिव पिनाक।
उसी निमित्त यह धनुषयज्ञ लीला है।

सब : उसी निमित्त यह धनुषयज्ञ लीला है।
उसी निमित्त यह धनुषयज्ञ लीला है ॥

मसखरा : यह है हीरा जवान।
बना है लक्ष्मण सुजान ॥

सब : बना है लक्ष्मण सुजान।

मसखरा : यह बिमला बनी जानकी माई है।

सब : राम को लड़ाई है।
बिमला जानकी माई है ॥
आयी राम की लड़ाई

हे भाई, हे भाई ॥

मसखरा : साहजी बने हैं वाणासुर
चीलरसिंह बने हैं मगध-नरेश
नेताई बने हैं रावण।
एक राजनेता
एक पुराना जमींदार, एक साहूकार
इन तीनों ने मिलकर की तबाही है।

सब : अरे, गपोले तो गायब हैं।
इन्हीं तीनों के नायक हैं ॥

मसखरा : परसुराम का पार्ट वही कर रहे थे
अच्छा-अच्छा तो भाँजी मार दी, वाह-वाह
इन्हें संभालो, ई है लखपतिया
बना है कासी-नरेस। देखो भेस।
ई हैं नेउर, बने हैं कसमीर-राजा
ये हैं गड़बड़सिंह। अरे, आप यहाँ कैसे आ गये ?
जाइये, दर्शकों में बैठिये। वहाँ खाली रहेगा तो यहाँ कैसे चलेगा ?

गड़बड़सिंह : खबरदार, फिर मुझे मत बुलाना।

(दर्शकों में जा बैठते हैं।)

मसखरा : मेरा नाम है कालू
कालू से बना मसखरा।

(गाता है)

मैं तो बनारस कै ठलुआ रे
कालू मेरा नाम

सब : मैं तो बनारस कै ठलुआ रे

कालू मेरा नाम। कालू मेरा नाम।

बिमला : अरे, मेरी सखियों का परिचय तो कराया ही नहीं।

मसखरा : मार कटारी मरि जाना
ओ अँखियाँ किसी से लगाना ना।
(सब गाते हैं। मालती और शान्ति दोनों सखियाँ नाचती हैं।)

रमई : बस-बस, हो गया परिचय। परिचय के बहाने, लगे गाने-नाचने। अब शुरू करो धनुषयज्ञ लीला।

कैसी मजेदार बात
मिली हमें आजादी आधी रात।

सब : कैसी मजेदार बात।
मिली हमें आजादी आधी रात॥

सरजू : रात के अँधेरे में क्यों? सुबह की रोशनी में क्यों नहीं? क्या वह नाटक था?

रमई : क्या कहा?

सरजू : हाँ, वह नाटक था। जैसी जिस तरह आजादी मिली, उसी का अपराध भाव था।

सब : कैसी मजेदार बात।
मिली हमें आजादी आधी रात॥

बिमला : तो क्या हुआ। यह भी तो सच है—क्या?
बेला फूले आधी रात
बेला फूले आधी रात॥

सब : बेला फूले आधी रात।

मिली आजादी आधी रात॥
(गायन)

बिमला : बेला फूले आधी रात,
गजरा मैं के-के गले डालूँ?
राम गले डालूँ लखन गले डालूँ
बेला फूले आधी रात,
गजरा मैं के-के गले डालूँ।

सरजू : बेटी, जो शिव-धनुष उठायेगा, गजरा उसी के गले डालोगी।

(गाते हुए लोग चलते हैं)
राम की लड़ाई आयी
हे भाई, हे भाई।
राम की लड़ाई आयी
आधी रात आजादी आयी
राम की लड़ाई आयी।
बेला फूलने की बहार आयी
राम की लड़ाई आयी।
हे भाई, हे भाई
राम-रावण की लड़ाई आयी।

विदूषक : हअ! हा हा हा! कहाँ राम कै रमायन, कहाँ उरदे कै भस्का। खाली पेट आजादी का चस्का। अरे, तू किधर खस्का?

नेउर : बेफजूल टर्र-टर्र। मैं चला अपने घर्र।

विश्वामित्र : नहीं, नहीं, धनुष-भंग प्रसंग शुरू।

(गायन)

सब : रघुनाथ तुम्हारे चरित मनोहर
गावहिं सकल अवधवासी।
अति उदार अवतार मनुज बपु
धरे ब्रह्म अज अनिवासी।।

सरजू : प्रथम ताड़काहति सुबाहुवधि प्रन राख्यो
द्विज हि सब नृपन को गरव हरयो,
भंज्यो संभु चाप जनक-सुता समेत
आवत गृह परसुराम अति हासी।

सब : रघुनाथ तुम्हारे चरित मनोहर
गावहिं सकल अवधवासी।

मसखरा : सुनो पंचो, सुनो। गपोले पांडे जो परसुराम बनने वाले थे, उन्हें नेताई ने फोड़ लिया। कहा—ओ गपोले, यही वक्त है—साफ़ कह दो जनक और विश्वामित्र से—ग्राम पंचायत चुनाव में अगर सारा गाँव वोट दे मुझे, तभी परसुराम का पार्ट करूँगा, हाँ, नहीं तो।

रमई : बड़ा धोखा किया गपोले ने। भाई कालू, कोई मदद कर।

मसखरा : फिर कहा कालू ?

रमई : नहीं, नहीं, मसखरा भाई।

मसखरा : वादा करो—सरपंच के चुनाव के लिए मुझे खड़ा करोगे।

रमई : अरे, रामलीला होने को है, तू भी ऐसी बात कर रहा है। मारूँगा एक हाथ कि···।

मसखरा : अरे रे रे, उपाय बताता हूँ। गड़बड़सिंह को बुलाइये। आ जाओ, भाई।

रमई : हम से गलती हुई। छिमा करो। आ जाओ, परसुराम का पार्ट करो।

गड़बड़सिंह : पार्ट करो ! अपना सिर ! अपनी जगह छोड़कर नहीं आता। बुलाओ गपोले को, मैं क्यों आऊँ ?

मसखरा : अरे, आ जाइये। कान में एक बात बताता हूँ। (आते हैं) आपकी शादी पक्की—परसुराम का फस्टक्लास अभिनय कर दो। लड़की वाले दर्शकों में बैठे हैं। इधर नहीं, उधर। उधर नहीं, इधर। जाइये, परसुराम बन के आ जाइये।

(जाते हैं। दो लोग शंकर-धनुष ले आते हैं। मसखरा दौड़कर उनकी मदद करता है। धनुष सामने रखा जाता है। मसखरे की कमर टेढ़ी हो गयी है। वह दर्द से चिल्लाता हुआ भचकने लगता है। दोनों आदमी पैर-सिर पकड़, खींचकर सीधा करते हैं।)

रमई : बस, बस, ज्यादा सीधा मत करो, नहीं तो ऐंठ जायेगा। हाँ, अब धनुषयज्ञ लीला शुरू करो। संगीत छेड़ो। सावधान, सब लोग अपने-अपने संवाद याद रखें।

मसखरा : ऐ बच्चे लोग, चुप हो जाओ। चकर-पकर बन्द। अपनी-अपनी जगह पर बैठ जाओ।

(संगीत और गायन।)

राजा जनकजी के द्वारी

भीड़ नहीं जात सम्हारी
देश नरेसन भूपति आये।

मसखरा : (बीच में) बैठे हैं सब तोंद फुलाये।

रमई : चुप !

देश नरेसन भूपति आये
बाँधे ढाल तलवारी...राजा जनक...
जनकपुरी में धूम मच्यो है,
महकत है फुलवारी।
राजा जनक को भाग जगो है
धनुषयज्ञ की बारी॥

रमई : अरे, आप लोग वहाँ क्या कर रहे हैं? संवाद बोलिये, संवाद।

मसखरा : अरे, जब आपस में झगड़ा है तो संवाद कहाँ से फूटे? देखिये, चुपचाप खिचड़ी पका रहे हैं। रावण नेताजी, साहजी बाणासुर। कोई तिकड़म लगाने में फँस गये हैं।

रमई : लीला शुरू है, अपना संवाद बोलो, रावण।

मसखरा : ऐ रावण, तेरा ध्यान किधर? देख, लीला शुरू है इधर।

नेताई : अबे क्या करता है टर्र-टर्र।
मारूँगा, होश उड़ जायेगा उधर।

मसखरा : (उँगली पर टोपी नचाता हुआ) यह टोपी है अलबेली।
इक्कीस साल में तेइस बार इसने दल बदली।
किस्तीनुमा है टोपी जिधर हवा उधर चली।

मत पूछिये इसका असली क्या था रंग।
असल तो कुछथा ही नहीं, थी शुरू से ही बदरंग।
अब इसे नीलाम कर दूँ,
जो अधिक दे उसके कदमों में रख दूँ।
सुना है दल-बदल रोकने का कानून पास हो रहा है।

नेताई : बन्द कर बकवास।

मसखरा : हाँ शुरू, हो जाव शुरू।

नेताई : भाई, अपन तो राजनीति के आदमी हैं। पहले यह बताओ, रामलीला में चन्दा कितना वसूल हुआ? किसने चन्दा इकट्ठा किया? किसके हुकम से हुआ? माल किधर गया?

शाहजी : हाँ, हिसाब हो जाना चाहिए।

मसखरा : अपने-आपको राजनीति का आदमी मत कहो। भ्रष्ट राजनीति का पशु कहो। रावण टिर्र, गधे का सिर्र। अरे, अरे, मुझे क्यों मारते हो? मैं तो आपकी प्रजा हूँ। उन्नीस सौ सत्तावन में पाँच कुएँ खोदे गये कागज पर—ढाई हजार फी कुआँ, सन साठ में तीन तालाब पाटे गये, जबकि तालाब थे ही नहीं। सन उनहत्तर में चकबन्दी आयी—फी चक पाँच सौ रुपये। सन पचहत्तर में नसबन्दी आयी···।

नेताई : बस, बस, हिसाब हो गया।

मसखरा : अरे, अभी तो रोकड़-बही पूरी खुली भी नहीं।

नेताई : शाहजी, इसका मुँह बन्द।

शाहजी : ये रख मूसरचन्द।

(रावण धनुष को देखता है।)

रावण : (अभिनय) अरे, यह मेरे गुरु का धनुष है, जो इसकी हँसी उड़ायेगा, चूर-चूर हो जायेगा।

शाहजी : अरे, यह संवाद नहीं है—तुम्हारे पिछले चुनाव का नारा है—जो हमसे टकरायेगा, चूर-चूर हो जायेगा।

नेताई : वाह, वाह! ऐसा इलेक्शन फिर कभी नहीं आयेगा।

शाहजी : एक बूथ की लुटाई में पाँच हजार रुपये।

नेताई : नकद।

शाहजी : तीनों को कैसा बेवकूफ बनाया!

(दोनों हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं।)

अगला इलेक्शन पता नहीं कब होगा! समय बड़ा उदास हो गया है। हर साल इलेक्शन हो तो लोग फिलिम देखना बन्द कर दें।

नेताई : अरे, ब्याह-शादी बन्द हो जाये।

रमई : तुम लोग धनुषयज्ञ लीला करने आये हो या कपार फोरने?

नेताई : देखो, जबान संभालकर बोलो, वरना सब बन्द कर दूँगा, हाँ! चन्दे का हिसाब कहाँ है? मुझे जानते नहीं क्या?

मसखरा : आपको कौन नहीं जानता, महाराज! सन साठ में जब बड़की बाढ़ आयी थी, यही नेता बाबू जिला कलक्टर और अपने एम० पी० को लेकर

यहाँ आये थे मुआइना कराने। सरकार की तरफ से जो अन्न, कपड़ा मिला सब ऊपर-ही-ऊपर बेचकर खा लिया। घर बनवाने के लिए फी घर पाँच-पाँच सौ रुपये दिये सरकार ने। यही शाहजी और नेताजी ने मिलकर हमसे अँगूठा लगवाय लिया और सारी रकम हड़प कर गये। बम भोलेनाथ की!

नेताई : बेटे, अपना-अपना पुरुषार्थ है।

(सब राजा लोग दौड़े आते हैं।)

नेउर : यह पुरुषार्थ क्या होता है?

लखपतिया : यह राज हमें भी बताइये।

चोलरसिंह : हाँ, महाराज!

नेताई : मन्दिर देखा है न? सबसे ऊपर का जो हिस्सा होता है—सोना वहीं ऊपर लगाया जाता है। और नीचे नींव में जो कंकड़, पत्थर, ईंट, गारा लगा है, उसे कौन देखता है—पड़ा होगा। गाँव-जवार के ये देहाती लोग—वही कंकड़-पत्थर, ईंट-गारा हैं। मारो...। ऊपर देखना, ऊपर उठना, यही तो है पुरुषार्थ। अरे, पेड़ का फल कोई नीचे लगता है? ऊपर लगता है। अरे, हाथ बढ़ाओ, जिसके जितने लम्बे हाथ, हाथ में जितना बल, उतना ही फल।

सब : वाह! वाह! अरे वाह!

मसखरा : पर मन्दिर तो ऊपर से नीचे तक एक ही होता है। सोचिये भला।

नेताई : सोचना-विचारना तुम लोगों का काम, अपना काम तो पुरुषार्थ।

(इस बीच रमई तेजी से आते हैं जनक के भेष में।)

रमई : यह चरित्र अब नहीं चलने को। उस धरती में जहाँ मन्दिर की नींव दी जाती है, उसमें से जानकी निकली है। बायें हाथ से शिव-धनुष उठाकर दायें हाथ से पृथ्वी माँ की पूजा करती है। इस धनुषयज्ञ में कोई राम आयेगा—क्या है पुरुषार्थ, इसका अर्थ बतायेगा।

मसखरा : रावण का अभिनय करते हुए बोलिये—यह मेरे गुरु का धनुष है, इसका अपमान मैं नहीं सह सकता।

रावण : (अभिनय) रावण का अभिनय करते हुए बोलिये—यह मेरे गुरु का धनुष है, इसका अपमान मैं नहीं सह सकता।

(मसखरा हँसता है।)

वाणासुर! इसे हँसने दीजिये—हँसना-हँसाना ही इसका काम है।

वाणासुर : महाराज, इस धनुष को मेरी पीठ पर लाद दो। मैं इसे लेकर चम्पत हो जाऊँ।

रावण : हा हा हा! जिस रावण ने कैलाश पर्वत का मान-मर्दन कर पुष्पक विमान जीत लिया, वह मैं तुम्हारे साथ इस धनुष की चोरी में मददगार बनूँ! नहीं, यह नहीं हो सकता। सुन लो, यह धनुष कोई भी तोड़े, पर मेरे जीते जी जानकी

को मेरे सिवा और कोई नहीं ले जा सकता। हा-हा-हा!

मसखरा : शाबाश पट्ठे। (गा पड़ता है) मर गये, मर गये चम्पालाल, ठंडी बर्फ़ बनाने वाले।

नेताई : अरे, इधर आ, इधर। मुझे सब मालूम है।

शाहजी : मुझे भी मालूम है।

मसखरा : मुझे भी।

(सब बैठते हैं।)

रमई : यह क्या तमाशा है?

(मसखरा बढ़कर समझाता है।)

मसखरा : (मानो गाता हुआ) ज़रा-सी एक प्राइवेट बात है। ज़रा दूर हट जाइये—विघ्न मत डालिये।

शाहजी : रामगुलाम और बिमला की चाल नहीं चलने देंगे हम।

नेताई : नीची जाति का रामगुलाम, राम बने—मैं इस बात पर साम्प्रदायिक दंगे करा दूँगा। यह धर्म-शास्त्र के खिलाफ़ है।

शाहजी : पुरोहित जी से कहूँगा।

नेताई : ये लोग समझते क्या हैं?

मसखरा : ऐसा है कि बिमला कहती थी, आप लड़कियाँ बेचने का धंधा करते हैं।

नेताई : क्या कहा?

मसखरा : कुछ नहीं, कुछ नहीं, बिमला झूठ बोलती है। रामगुलाम को मैंने डाँट दिया।

शाहजी : रामगुलाम क्या बोलता है?

(राम के भेष में रामगुलाम आता है।)

रामगुलाम : रामगुलाम देखता नहीं, बोलता है। देख रहा हूँ, तुम लोग कब तक बोलते हो। बिमला कोई मामूली लड़की नहीं, वह अत्याचार-अन्याय के अंधकार को चीरकर बाहर आयी है। उसने मुझे जगाया है। कोई ताकत हमें अलग नहीं कर सकती।

नेताई : जा, जा, छोटा मुँह बड़ी बात।

शाहजी : अभी तीन सौ पैंतीस रुपये कर्ज है तेरे ऊपर।

चौलरसिंह : तेरा घर मेरी ज़मीन पर बना है।

रामगुलाम : गाँव की सारी ज़मीन अब ग्राम-पंचायत की है।

नेताई : ग्राम-पंचायत हमारी है।

रामगुलाम : रमई काका, देखो यह त्रिभुज राक्षस! जमींदार, बनिया और नेता—ये तीन भुजाएँ हैं उसकी।

नेताई : क्या कहा?

रामगुलाम : मुझे कुछ कहना नहीं आता।

(जाता है।)

रमई : धनुष-लीला में विलम्ब हो रहा है।

शाहजी : कहता है, बिमला ने मुझे जगाया। हम भी तो रोज़ सोकर जागते हैं।

रमई : फिर सो जाते हैं। चलो, शुरू करो।

नेताई : मैं कहता हूँ, रामगुलाम को राम क्यों बनाया गया?

सरजू : तुम मन्दिर के केवल शिखर देखते हो, जबकि

मन्दिर एक सम्पूर्ण है, नींव से लेकर ऊपर तक। खुद टूटे और बँटे हो, तभी हर चीज़ को उसकी सम्पूर्णता से तोड़कर देखते हो। लीला के बहाने एक-दूसरे के पास तो आओ—फिर देखो, बाहर से अलग दीख रहा, भीतर सब एक हैं। रामगुलाम कितना शुद्ध और सीधा है। कहता है—जो भी है सब अपने ही हैं।

नेताई : तुम लोग रामगुलाम को सिर पर चढ़ा रहे हो। भोगोगे इसका नतीजा।

मसखरा : आप लोग तो खामखाह डरते हैं। धूल में रस्सी बरते हैं। चलिये, रामलीला शुरू करते हैं। देखिये, पुरानी बातें फिर यहाँ मत लाइये।

सरजू : रामलीला के बहाने अपने-आप में से ज़रा बाहर आ जाइये।

मसखरा : भाइयो और बहनो, बुरा मत मानिये, ज्यों केले के पात में, पात-पात में पात, त्यों नेता की बात में, बात-बात में बात।

नेताई : आखिर बिना किसी ताकत के कोई कैसे खड़ा हो सकता है?

मसखरा : हे रावण, तुझे तो बातें करने का रोग हो गया है। हर वक्त वही ताकत, ताकत, ताकत। बन्द करो मुँह का फाटक।

नेताई : अबे, तुझे क्या पता! जिसे लग जाये एक बार ताकत का नसा। आखिर रामगुलाम की ताकत क्या है?

मसखरा : उसकी ताकत तो हर पाँचवें साल खींचकर लखनऊ और दिल्ली पहुँचा दी जाती है। बुरा न मानिये, आपके हाथ में घी-शक्कर।

सरजू : तुम्हारी ताकत बाहर है, तभी तुम आज़ाद बनकर भी पराधीन हो। हमारी ताकत वही ईश्वर, वही अपना करम, वही अपना धीरज-धरम।

मसखरा : चना गरम। चना जोर गरम। चना गरम। बेचना-बिकना हो अपना धरम।

नेताई : अरे, चुप रहता है या नहीं।

मसखरा : ये हैं चना गरम के व्यापारी, मैं हूँ इनका पटवारी।

नेताई : देखो, यह बदमाश रामलीला नहीं होने दे रहा।

मसखरा : क्योंकि रावण राम बन रहा। पर अब नहीं चलेगी यह चाल। जनता खींच लेगी खाल।

नेताई : जनता माने ?

रमई : जानकी।

नेताई : जानकी माने ?

सरजू : जनक की बेटी, भारत माँ, जिसके शरीर में ऋषि-मुनियों का रक्त है। जिसने पृथ्वी के भीतर से जन्म लेकर हमें यह जताया कि हमारी जान-पहचान तभी पूरी होती है, जब हम अपने से बाहर आते हैं। पर जो अकेला है, वह बाहर नहीं जा सकता, सारी शक्तियों के बावजूद रावण अकेला था। अकेला था तभी डरा हुआ था। डरा हुआ था तभी शक्ति को चुराता, डाके डालता रहता था।

नेताई : तो मैं वही रावण हूँ—मैं रावण, लीला नहीं करूँगा।

सरजू : यही तो, रावण मत बनो। रावण की लीला करो। कपड़े उतारे नहीं कि रावण गायब। भ्रष्ट नेतागिरी को कपड़े की तरह उतारकर देखो, कितने सहज सुन्दर हो, जैसे सब हैं। कहाँ भटकते हो, चलो, रावण बनकर देखो—क्या है रावण। जब अपने-आपको देखोगे तो उसी देखने में सब-कुछ साफ़ दीखने लगेगा।

नेताई : चलो, देखता हूँ।

मसखरा : रामगुलाम को या अपने-आपको ?

नेताई : अगर मैं रावण बन सकता हूँ तो राम भी बन सकता हूँ। हनुमान और भरत भी।

सरजू : यह हुई न बात।

नेताई : मेरा संवाद क्या है ?

मसखरा : रावण धनुषयज्ञ मंडप में आकर पृथ्वी माँ को प्रणाम करता है। प्रणाम करो, रावण।

नेताई : पृथ्वी रावण की माँ ? फिर तो जानकी रावण की बहन हुई ?

मसखरा : यही लीला है। बाहर से जो इतने परस्पर विरोधी दिख रहे हैं—सबका एक ही सम्बन्ध है।

(रावण पृथ्वी को प्रणाम करता है। संगीत बजता है। गायन होता है।)

मूरख, छाड़ि वृथा अभिमाना
औसर बीत चल्यो है तेरो दो दिन को मेहमाना
भूप अनेक भये पृथ्वी पर रूप तेज बलवाना
कौन बच्यौ या काल तालिते मिट गये नामनिसाना
धवल-धाम गज धन रथ सेना नारी चंद्र समाना
अन्त समै सबही को तजि के जाय बसे समसाना...।

रावण : बस, बस, बस। राजागण दिलों पर हाथ रख लें।
यह मेरे गुरु का धनुष है, इसे मैं ही उठा सकता हूँ। मैं लंकापति। मेरी भुजाओं में अपार बल। जिधर देखता हूँ उधर सब-के-सब निर्बल।

बाणासुर : सत्य वचन।

मसखरा : रावण, सुन ले आकाशवाणी। तेरी कन्या कुंभनिसी को मधुदैत्य चुराये लिये जा रहा है। कुम्भकरण सो रहा है। मेघनाथ भोजन कर रहा है। भागो, जाओ, अपनी कन्या को राक्षस से बचाओ।
(रावण और बाणासुर भागते हैं।)

दूसरा दृश्य

(संगीत उभरता है।)

बोले बन्दी वचन वर सुनहु सकल महिपाल।
पन विदेह कर कहहिं हम भुजा उठाई विसाल॥
नृप भुजबलु विधु सिवधनु राहू,
गरुअ कठोर विदित सब काहू॥
रावण बानु महाभट मारे,
देखि सरासन गवहिं सिधारे॥
सोइ पुरारि को दंड कठोरा,
रामसमाज आजु जोई तोरा॥

जनक : जनकपुरी में पधारे हुए महिपाल, राजा सुजान सुनो। सुनो मेरा प्रण। जो इस शंकर-पिनाक को उठा लेगा उसे मैं अपनी बेटी जानकी का पति मानूंगा। जो करेगा अपना भुजबल से मेरा यह प्रण पूरा, उसे मेरी बेटी जयमाला देगी, न होगा मेरा वचन अधूरा।

मसखरा : गुरु-संग पधारे हैं लक्ष्मन-राम इस नगर में, किसी क्षण भी वे आ सकते हैं, इस रंगभवन में।

धनुषयज्ञ शुरू हो चुका है। वीर जन आजमायें अपनी किस्मत को। हटो, बचो, चीलरसिंहजी आ रहे हैं, बाप-रे-बाप, इतने गुस्से में।

(बड़ी तोंद वाले चीलरसिंह आते हैं।)

आपकी तारीफ़ ?

चीलरसिंह : बता, क्या है तारीख ?

मसखरा : हमारे यहाँ तारीख, सन, संवत् नहीं चलती, हमारे यहाँ चलती हैं अँग्रेज़ी की 'डेट', चीलरसिंह महाराज है विलायती ठेट। ये नहीं जानते क्या हैं नीति-अनीति, ये करते हैं सिर्फ विलायती राजनीति।

चीलरसिंह : मैं अँग्रेज़ हूँ, विलीवास्केट !

मसखरा : अँग्रेज़ नहीं, रंगरेज हैं। कोई भी सीधी-सादी चीज हो, कोई भी बात हो, उसे झट रंग देंगे अपनी भ्रष्ट राजनीति के रंग में, छुये बिना धनुष को कर देंगे धनुष-भंग ये।

चीलरसिंह : और क्या, मुझ जैसा वीर कौन है ?

मसखरा : (गा उठता है।)

ये हैं बड़े वीर मजबूता।
ये हैं बड़े वीर मजबूता।
मक्खी मारें मोंछ उखारें
तोड़ें कच्चा सूता।
ये हैं बड़े वीर मजबूता।
हँड़िया दाल सवासौ राटा
खाकर हो गये मोटे।

एक जलावें चार लड़ावें
खुद खटिया तर लूका
ये हैं बड़े वीर मजबूता।
तो चलिये महाराज, धनुष उठाइये।

चीलरसिंह : फाइल की तरह धनुष मेरा प्राइवेट सेक्रेटरी उठायेगा। मैं तो केवल हस्ताक्षर करता हूँ।

मसखरा : अरे, यह फाइल नहीं, धनुष है।

चीलरसिंह : यह धनुष तो कभी का टूट चुका है।

मसखरा : जी हाँ, पहले तोड़ा अँग्रेज़ों ने, इस्तमरारी बन्दोबस्त करके, परमानेंट सेटिलमेंट; फिर तोड़ा जमींदारी ने, लूट-पाट में भाग लेकर। फिर तोड़ा चुनाव ने; जो बाकी रहा उसे लगे हैं हम तोड़ने में। जै राम जी की।

चीलरसिंह : यह रामलीला हो रही है कि पोपलीला ?

मसखरा : जब आपने कहा कि यह धनुष कभी का टूट चुका है, तो कहाँ से होगी अब रामलीला ?

चीलरसिंह : अरे, मेरे मुँह से निकल गया।

मसखरा : यह कोई भ्रष्ट राजनीति का मंच है, जो आया बक दिया ? यह वह नौटंकी नहीं, जहाँ आप अकसर रूप बदलते हैं। जी हाँ।

(दौड़े हुए गपोले आते हैं।)

गपोले : (गुस्से में) वेगिदेखाऊँ, मूढ़ न त आजू, उलटो महि जहँ लगि तब राजू। हा-हा-हा, चंड पर चंक कर दूँ, पर्वत को भी खंड-खंड कर दूँ। कहाँ है गड़बड़सिंह ? मेरे जीते जी कोई दूसरा कैसे कर

सकता है परसुराम का पार्ट ? मारूँ वह झापड़ कि फेल हो जाय हार्ट !

मसखरा : अब संभालो। आपने मना कर दिया था कि रामलीला में भाग नहीं लूँगा। परसुराम का पार्ट नहीं करूंगा।

गपोले : तुम्हारी यह हिम्मत कि तुम दूसरा परसुराम बना लो !

मसखरा : अरे भाई, रामलीला तो करनी थी।

गपोले : कहाँ है गड़बड़सिंह ? उसकी यह हिम्मत कि मेरे जीते जी वह परसुराम बने ! मैं उसकी खाल खींचकर, भूसा भरा कर....।

मसखरा : रंग लगाकर, भंग पिलाकर इंग्लैंड भिजवा दूंगा।

रमई : देखिये, रामलीला में विघ्न मत डालिये। दर्शकों में बैठकर शान्ति से रामलीला देखिये।

गपोले : तुम चुप रहो, रमई काका।

चीलरसिंह : बड़े राजा जनक बने हुए हैं !

मसखरा : सारी आग उसी नेताई की लगाई हुई है। पहले गपोले को मना किया—शर्त रखी चुनाव में समर्थन की। जब दूसरा परसुराम आ गया तो अब आग में मिट्टी का तेल डाल दिया।

गपोले : चुप रहता है कि नहीं ?

रमई : रामलीला होने दोगे कि नहीं ?

गपोले : रामलीलात भी होगी जब मैं होऊँ परसुराम।

नहीं जानते मेरी कूअत, उलट दूँगा सारा काम।
उलट दूँगा सारा काम, मेरा है नाम गपोले।
गड़बड़सिंह के सिर पर, मैं बरसाऊँ गोले।

(**गुस्से में परसराम के रूप में गड़बड़ आते हैं।**)

गड़बड़सिंह : अरे जा, जा, यहाँ कोहड़ बतिया कोउ नाहीं,
तो तर्जन देखत मुरझाहीं।
मैं गड़बड़ नहीं, अब हूँ परसुराम,
फरसा मेरे हाथ में, कर दूँ काम तमाम।
कर दूँ काम तमाम, नहीं हूँ ऐसा-वैसा,
लौटे चला जा जैसे का तैसा।

गपोले : तेरी यह मजाल, खींचता हूँ तेरी खाल।

गड़बड़सिंह : जा, जा, मत बजा गाल।

(**संघर्ष। लोग बीच-बचाव करते हैं।**)

गपोले : या तू रहेगा या मैं।

मसखरा : सच है—रह नहीं सकतीं दो तलवारें एक म्यान में, दोनों उम्मीदवार हैं सरपंची के चुनाव में। सारी आग नेताई की लगायी हुई है। चीलरसिंह, तुम क्या खुसुर-पुसुर कर रहे हो ?

चीलरसिंह : सब वही कर रहे हैं।

सरजू : सब पर इतना बीता है कि वही फूटकर बहने लगता है। फिर भी सोचो तो भला, आखिर तब भी एक-दूसरे के साथ क्यों रहना चाहता है ? क्योंकि एक-दूसरे के साथ फिर भी अपनी किसी सनातन एकता, समानता का अनुभव

करता है। जिसे इस अनुभव पर विश्वास नहीं वह इस लीला में हिस्सेदार नहीं।

(इस बीच नेताई और शाहजी वहाँ आ खड़े हुए हैं।)

नेताई : मैं पूछता हूँ—गपोले को परसुराम क्यों नहीं बनाया जाता ?

शाहजी : जो पहले का फैसला था वह माना क्यों नहीं जाता ?

रमई : फैसला आप करें, खुद ताड़ें आप, फिर उलटे लड़ें भी आप, और इस गन्दी लड़ाई में सबका लहू-लुहान करें।

नेताई : क्या मतलब ?

मसखरा : मतलब मैं समझा दूं—पर हाथ जोड़ता हूं मेरे इस सिर का खयाल करना, मेरे बच्चों का ध्यान रखना। मतलब यह है कि आज से चालीस साल पहले आप ही इस गाँव में तिरंगा झंडा लेकर आये। पाँच साल बाद समाजवादी झंडा लाये। और तिरंगे झंडे को उलटकर झोला सिला लिया।

गपोले : अबे चोप्प !

नेताई : निकाल दो इसे। अरे रे, रामलीला से, अपनी पारटी से नहीं।

मसखरा : बकवास है तुम्हारी पारटी।

सरजू : बकवास हमारी ज़िन्दगी में है तो इससे बचोगे कैसे ? यहाँ घटी हर घटना का सम्बन्ध हमसे है, इसीलिए हम ही ज़िम्मेदार हैं। हर झंडे ने हमें

बाँटा और हर चुनाव ने हमें मनुष्य से वोटर किया। जो कुछ कहीं होता है, उसका असर तब तक नहीं मिटता, जब तक वह मिटाया नहीं जाता। और यह तब तक सम्भव नहीं होता जब तक हर आदमी यह महसूस नहीं करता कि एक नहीं, सब हैं सब के लिए ज़िम्मेदार।

(सब चलते हैं। यात्रा-गान)

राम की लड़ाई आयो
हे भाई, हे भाई।
आगे-आगे राम चलें
पीछे लछिमन भाई।
ताके पीछे मातु जानकी
बिपदा कही न जायी
हे भाई, हे भाई।
राम की लड़ाई आयी
हे भाई, हे भाई।

(यात्रा थमती है।)

तीसरा दृश्य

(रामगुलाम के दरवाजे पर मालती के साथ बिमला आती है।)

रामगुलाम : बिमला, क्या बात है ? मालती, क्या हो गया ? बोलती क्यों नहीं ?

मालती : बहुत जुलुम हो गया। बिमला दीदी के पिता की हत्या हो गयी।

रामगुलाम : शिवशंकर बाबा !

मालती : उन्नीस सौ इकहत्तर का यह चुनाव जो कुछ न करा डाले थोड़ा है।

रामगुलाम : यह कब की बात है ?

बिमला : इलेक्शन से पिछली रात की। उस दिन सुबह से तीनों पार्टियों के लोग झोले में रुपये, पिस्तौल, हथगोला भरे पिताजी के पास आते रहे। हर तरह से दबाव डालकर अपने हक में वोट लेने के लिए।

रामगुलाम : जिसका नाम शिवशंकर बाबा ले लेते, पूरा इलाका, गाँव-जवार उसी को ही मतदान करता।

बिमला : वह एक-एक को डाँटते-फटकारते रहे—यह आज़ादी नहीं, गुलामी है। यह मतदान नहीं, डाकाजनी है। भारत माता का श्राप लगेगा। सारे गाँव-जवार से कह दिया कि जब चुनने को कुछ नहीं है तो चुनाव किसका ! उसी रात मेरे साधू पिता की हत्या....।

(एक औरत आती है।)

औरत : अरे, यही तो है बिमला—शिवशंकर की बेटी। इसके घर आयी है। इसके साथ घर-बैठा बैठेगी ?

मालती : चुप रह, मुँहझौंसी।

औरत : हाँ-हाँ, पता है बड़ा परेम है—मुला गाँव वाले हड्डी-पसली एक कर देंगे। ऊँची जात की लड़की, नीची जात का लड़का—वही कहावत है कि राह चला न जाये, रजाई का फाँड़ बाँधे। गलुक्का देखो इतना ना फुलावो, हाँ....।

मालती : जा, जा....।

(औरत जाती है।)

बिमला : क्या सोच रहे हो ?

(सरजू बाबा उठते हैं।)

रामगुलाम : कुछ नहीं। आवो, घर में चलो।

बिमला : सोच लो—बहुत लम्बी लड़ाई है।

रामगुलाम : सोच लिया है।

सरजू : सोच नहीं, संकल्प करो।

रामगुलाम : संकल्प करता हूँ।

सरजू : अब बोलो अपने अन्तःकरण से।
खबरदार, भागकर पीछे न चले जाना।
हर समय इसी वर्तमान में रहना।
समस्या वर्तमान है तो इसका हल भी वर्तमान में ही है। जो रो पड़ता है, वह पीछे भागता है, अपने बचपन में। बचपन में कितना रोया है, याद है न? वही रुलाता है। वर्तमान में संकट आया नहीं कि वही बच्चा खींचकर पीछे भागता है। पीछे मत जाना, भागना नहीं।

रामगुलाम : आपका आशीर्वाद। सुनो बिमला, तुम्हारा इस तरह आना, मेरे घर में रहना, तुम्हारे आत्म-सम्मान के खिलाफ है। यहाँ ले आने के लिए तुम्हें, मैं खुद आऊँगा तुम्हारे घर।

बिमला : तब लड़ाई होगी।

रामगुलाम : लड़ाई लड़ूँगा।

(बिमला लौट जाती है।)

सरजू : और एक दिन रामगुलाम गया बिमला के गाँव। सोहाग चूनर, चूड़ियाँ, पायल, बिछुए, सिंदूर लिये। गाँव वालों ने विरोध किये। लाठियाँ उठा लीं। मार दो जान से—ब्राह्मण की बेटी ले जाने आया है। मैंने समझाया। यह सम्बन्ध जात-बिरादरी से ऊपर का है। यह दैवी सम्बन्ध है। राम मेरा शिष्य है। मैंने उसे बचपन से पढ़ाया-सिखाया। उस जैसा चरित्रवान, धैर्यवान....।

एक : और बलवान।

दूसरा : शक्तिवान।

(दोनों लाठियाँ लिये सरजू को घेर लेते हैं।)

सरजू : हाँ-हाँ, बलवान, शक्तिवान।

एक : देखते हैं, तेरा शिष्य कैसे ले जाता है हमारे गाँव की बेटी?

दूसरा : अपने शिष्य को बचाकर ले जावो चुपचाप।

सरजू : मेरा शिष्य ऐसा-वैसा नहीं।

दोनों : क्या कहा?

(रामगुलाम और बिमला आकर सरजू को बचाते हैं।)

बिमला : तब कहाँ थे तुम लोग, जब मेरे साधू पिता की हत्या हुई? कहाँ था सारा गाँव-जवार, जब कोई मुझे छूना, स्पर्श करना क्या, मुझे देखना भी नहीं चाहता था। मुझे ऐसा चर्मरोग हुआ था कि जिस रास्ते से मैं गुज़रती, लोग रास्ता छोड़ देते। मेरा शरीर-चर्म, पत्थर के समान जड़ था। इसे न जाड़ा लगता, न गरमी। लोग मेरे मुँह पर कहते, खासकर औरतें—बिमला कुलच्छनी है—इसे श्राप लगा है—स्पर्श-सुख इसके भाग्य में नहीं है। जिसके स्पर्श से आज मैं जड़ से चेतन हुई अब मुझे उससे कौन अलग कर सकता है?

(बिमला, रामगुलाम सरजू के साथ चलते हैं। यात्रा-गान)

राम की लड़ाई आयी
हे भाई, हे भाई।

टूटी धनुइयाँ है
छोटे-छोटे हाथ हैं
एक रथ पै चढ़ा
एक पैदल जायी।
राम की लड़ाई आयी
हे भाई, भाई ।।

चौथा दृश्य

(धनुष-यज्ञ लीला)

जनक : धन्य है, सभा-मंडप दर्शकों से भर गया।

मसखरा : मेहमान लोग अपने-अपने आसनों पर जम गये।

जनक : योधा, राजागण, सभा-मंडप जन, सुनें। इस धनुष का निर्माण विश्वकर्मा ने किया। यह शंकरजी को दैत्यों को मारने के लिए दिया गया।

मसखरा : ऐसा ही एक धनुष विष्णु के पास था। एक बार ब्रह्मा ने शिव और विष्णु में झगड़ा करा दिया।

जनक : दोनों में भयानक युद्ध हुआ। युद्ध विध्वंसकारी हो जाता, यदि देवता बोध में न आ जाते। उन्होंने कहा—इस धनुष का निर्माण असुरों को मारने के लिए हुआ था। वह उद्देश्य पूरा हो चुका। इसे अब स्मृति-रूप में कहीं रख देना चाहिए। विष्णु ने अपना धनुष ऋचीक के पास और शंकर ने निमि के पुत्र देवरात के पास धरोहर रूप में रख दिया।

विश्वामित्र : ध्यान से सुनो। राजा जनक को यह पैतृक

सम्पत्ति के रूप में मिला। वह नित्य इसकी पूजा करते थे। एक दिन उनकी बेटी ने धनुष उठाकर उसे झाड़-पोंछकर एक और उत्तम स्थान पर रख दिया। राजा जनक चकित रह गये। उन्होंने संकल्प किया कि जानकी का विवाह उसी वीर पुरुष के साथ करूँगा जिसमें इस धनुष को उठाकर प्रत्यंचा चढ़ाने की शक्ति हो।

जनक : जो वीर इस धनुष की प्रत्यंचा खींचकर चढ़ा देगा, उसी के साथ जानकी का विवाह बिना कुल-जाति-विचार किये कर दिया जायेगा।

(राजागण अपनी-अपनी कमर कसते हुए परस्पर)

राजागण : यह क्या ? जानकी का ब्याह बिना कुल-जाति-विचार किये कर दिया जायेगा !

मगध-नरेश : ओ मुख्य है वीरता।

काशी-नरेश : पुरुषार्थ।

(राजा लोग अपनी-अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हैं।)

मसखरा : अरे, शक्ति-प्रदर्शन कुर्सी पर नहीं, यहाँ करो।
मिला है यह तमाशा देखने को आज भागों से।
खिचे आयेंगे राजा लोग कच्चे धागों से॥

(राजा लोग हँसते हैं।)

अरे, हँसिये नहीं, एक-एक आकर धनुष उठाइये, अपनी किस्मत आजमाइये, और तशरीफ़ का टोकरा यहाँ से ले जाइये।

(गपोले आते हैं।)

गपोले : मैं हो हूँ परसुराम इस लीला का।

(गड़बड़सिंह दौड़े आते हैं।)

गड़बड़सिंह : मैं हूँ परसुराम रामलीला का।

गपोले : काँप उठते हैं लोग जब मैं बोलता हूँ।

गड़बड़सिंह : तुम बोलते नहीं, हकलाते हो।

गपोले : क्या कहा !

(दोनों फरसा लेकर एक-दूसरे पर प्रहार करने को होते हैं। राजा जनक के रूप में रमई आकर।)

रमई : लड़ो नहीं, लड़ो नहीं, ठीक है।....इस राम-लीला में दो परसुराम होंगे, एक दाहिनी ओर खड़ा होगा, दूसरा बायीं ओर।

गपोले : मैं लैफ़्टिस्ट हूँ, बायीं ओर खड़ा होता हूँ। जहाँ जाता हूँ इनकलाब करता हूँ।

गड़बड़सिंह : इसकी खाल मोटी है। इसके लिए इनकलाब बन्दर की रोटी है।

मसखरा : सावधान, चुप रहिये, जब आपकी बारी आये तभी बोलिये।

गड़बड़सिंह : तुम हकलाते हो, इसलिए केवल मूक अभिनय करोगे। संवाद मैं बोलूँगा।

गपोले : (हकलाते हुए) यह किसका फैसला है ?

रमई : मेरा।

(संगीत बजता है।)

मसखरा : मिला है यह तमाशा देखने को आज भागों से।
खिचे आये हैं राजा कच्चे धागों से॥

जनक : अब वीर पुरुष एक-एक कर शिव-धनुष के पास आयें।
अपने भुजबल और पराक्रम को आजमायें ॥

चीलरसिंह : ये न समझो मेरी इस बात में गरूरी है।
सीता-स्वयंवर में सीता की उपस्थिति जरूरी है ॥

जनक : ठीक कहा, यह हमारी भूल है।

गपोले : अपने ही आदमी हैं।

गड़बड़सिंह : तभी पेट में चीलर काट रहे हैं।

मसखरा : ऐ, चुप रहो।

गपोले : चौप्प !

मसखरा : रंगभवन में जानकी पधार रही हैं।

(गायन उभरता है। जानकी दो सखियों सहित धीरे-धीरे पधारती हैं।)

जानि सुअवसर सीय तब पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखी सुन्दर सकल, सादर चलीं लवाइ ॥
सिय शोभा नहीं जायी बखानी,
जगदम्बिका रूप गुन खानी ॥
उपमा सकल मोहिं लघु लागी,
प्राकृत नारि अंग अनुरागी ॥
जो पटतरिअ तीअ सम सीया,
जग असि जुवति कहाँ कमनीया ॥

(विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण आते हैं।)

मसखरा : बोलो, सियावर रामचन्द्र की जय।

गपोले : मैं नहीं बोलूंगा जय-जयकार !

गड़बड़सिंह : ऐसे परसुराम को धिक्कार।

जनक : यह जनकपुर का सौभाग्य है। विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण यहाँ पधारे हैं। देश-देश के राजाओं के आगमन से हम धन्य हुए हैं। जानकी के कारण ही यह सौभाग्य है। यह स्वयंवर जानकी का धर्म है। जो उठावे शिव-धनुष वही पुरुष वर है।

विश्वामित्र : यह पूरा जगत धनुषयज्ञ लीला है। जीवन और समाज धनुष है—जो इसे उठाकर प्रत्यंचा कस दे, वही पुरुष है। यह धनुष शिव का है। सागर-मंथन में जब विष निकला तो चारों ओर हाहा-कार मच गया। सबकी इच्छा अमृत पीने की, विष कौन पीये ? जिस शिव ने पिया उस विष को, उसी का पिनाक है यह। जो अपने समय सागर-मंथन का विष पीने वाला होगा, वही उठायेगा इस धनुष को।

मसखरा : कौन है वह वीर जो इस धनुष को उठाये—राजा जनक की चिन्ता मिटाये ?

मगध-नरेश : मैं हूँ वह वीर जो इस धनुष को उठाऊँगा।

काशी-नरेश : ऐसे धनुष बहुत उठाये हैं।

जनक : आइये, एक-एक कर अपने पराक्रम दिखाइये।

मसखरा : उठिये। चलिये। सब डर रहे हैं कि हँसी होगी। भूल गये हैं कि यह धनुषयज्ञ लीला है। जो

अपने-आपसे बाहर निकल आवेगा, कर्म तो उसी के लिए होगा लीला। राम-लक्ष्मण के अलावा सब डर रहे हैं, क्योंकि अपनी ही सीमा में सभी मर रहे हैं। तो भइया, संगीत बजाओ। नेउर, लखपतिया को लीलामय बनाओ।

(संगीता बजता है।)

अरे नेउर, भूल जाओ, तुम नेउर हो। इस वक्त कश्मीर के राजा हो।

(संगीत गायन)

रंगभूमि जब सिय पगु धारी,
देखि रूप मोहे नर-नारी ।।
सिय चकित चित रामहिं चाहा,
भर मोहबस सब नरनाहा ।।
गुरुजन लाज समानु बड़,
देखि सिय सकुचानि ।।
लोकि विलोकन, सखिन तन,
रघुवीरसिंह डर आनि ।।

मसखरा : बस, बस, बन्द करो गाजा-बाजा।
धनुष उठाने आते हैं चीलरसिंह राजा।

चीलरसिंह : अरे ओ लखपतिया, संभाल मेरा पेट,
देता हूँ धनुष को एक चपेट।

(लखपतिया जो इस समय काशी-नरेश बना बैठा है।)

लखपतिया : हेश, हेश। लखपतिया है इस वक्त काशी-नरेश।

मसखरा : तो महाराज, मैं बन्द कर दूं आपका गेट।

संभालता हूँ आप का पेट।

(चीलरसिंह धनुष उठाने चलते हैं, बार-बार गिरते और लुढ़कते हैं।)

चीलरसिंह : देखना, अन्त में विजय मेरी ही होगी।

गपोले : बहुमत हमारा है।

गड़बड़सिंह : हाय, धड़ाम से गिर गया बेचारा है।

मसखरा : देखिय, यहाँ कोई क्रिकेट का खेल नहीं हो रहा है कि आप लोग कमेन्ट्री करते जा रहे हैं। चलिये एक बार और।

चीलरसिंह : हर्गिज नहीं। इस धनुष में है कोई चक्कर।

मसखरा : तो हो जाइये रफूचक्कर।

चीलरसिंह : यह भ्रष्टाचार है। इसकी जाँच के लिए कमीशन बैठे। जाँच-आयोग, यह मेरी माँग है। मैं इस सवाल को जनता में उठाऊँगा। इस संघर्ष को सड़क पर ले आऊँगा। गपोले, चलो, आओ मेरे साथ।

गपोले : इतनी मुश्किल से परसुराम का पार्ट मिला है, आप चलिये, मैं अपना पार्ट पूरा करके आऊँगा, फिर मज़ा चखाऊँगा।

(चीलरसिंह का प्रस्थान)

मसखरा : सावधान ! अब पधारते हैं काशी-नरेश।

काशी-नरेश : कहाँ है धनुष शिव का ?

गड़बड़सिंह : अरे लखपतिया, तुझे कम दिखायी पड़ता है रे।

काशी-नरेश : किसने कहा मुझे लखपतिया, तोड़कर मसल दूंगा जैसे कद्दू की बतिया।

मसखरा : नाराज़ मत होइये, काशी-नरेश। यह है धनुष, कीजिये क्लेश।

(धनुष उठाने में तरह-तरह के प्रयत्न और असफल होकर)

काशी-नरेश : आश्चर्य है, यह धनुष उठता क्यों नहीं ?

मसखरा : महाराज, जाकर थोड़ा दूध पी आइये !

लखपतिया : यह धनुष जगह-जगह से टूटा है, तभी यह उठाये उठता नहीं।

मसखरा : महाराज, अब प्रस्थान कीजिये।

लखपतिया : वह आ रहा है वाणासुर के साथ रावण, ध्यान दीजिये।

(रावण और वाणासुर हँसते हुए आते हैं।)

रावण : हम सबसे पहले आये थे, पर आकाशवाणी सुनते ही चले जाना पड़ा था।

वाणासुर : हा-हा-हा !

रावण : अरे, यह क्या सचमुच जनक का दरबार है ? जानकी के धनुष-यज्ञ का शृंगार है ? कहीं कोई नृत्य-संगीत नहीं। कहाँ है राजा जनक ?

जनक : स्वागत है लंका-नरेश का।

रावण : धनुष-यज्ञ में इतनी उदासी क्यों ?

गड़बड़सिंह : महँगाई बहुत है।

मसखरा : ऐ मुँह बन्द।

(जनक ताली बजाते हैं। एक के बाद दूसरी नर्तकी का नर्तन-गायन।)

वाह-वाह ! खुश रहो, आज़ाद रहो ! यहाँ रहो

या इलाहाबाद रहो।

नेताई : यह किसके घर की है ?

गपोले : शहर से लायी गयी है।

नेताई : और दूसरी ?

गपोले : लखपतिया की साली है।

नेताई : भाई, अपने देश में कितना सौंदर्य है ! कितनी कला है !

मसखरा : लीला-संवाद बोलिये। नाच-गाना बन्द।

(लीला-अभिनय)

रावण : तुम कौन ?

वाणासुर : स्वनाम-धन्य महाराज बलि का पुत्र वाणासुर हूँ। तुम कौन ?

रावण : पौल...(नहीं उच्चारण कर पा रहा है) पौल... पौल...मुझसे नहीं बोला जाता। मैं रावण का पार्ट नहीं करना चाहता था।

मसखरा : अच्छा, इस संवाद को काट दिया, आगे बोलो —मैं जगत्विजयी दशानन हूँ।

वाणासुर : पर असली नाम क्या है ?

रावण : लोग मुझे रावण कहते हैं।

वाणासुर : कैसा रोने वाला नाम है।

रावण : मूख, मैं दूसरों को रुलाता हूँ।

वाणासुर : अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना !

रावण : मेरी वीरता दिक्पालों से पूछो। देवगण मेरे डर से घर छोड़कर भागते हैं।

वाणासुर : तो उठाओ यह धनुष।

रावण : इसे कब का उठा चुका। मैं बिना धनुष चढ़ाये सीता का चरण करूँगा।

मसखरा : चरण नहीं, वरण।

रावण : अरे चरण-वरण में क्या अन्तर ?
तुम मेरा क्या कर सकते हो ?

वाणासुर : मैं वही करूँगा जो सहस्रार्जुन ने किया था।

रावण : सावधान, जीभ संभालकर बात करना।
मैं तुम्हें द्वन्द युद्ध के लिए आमन्त्रित करता हूँ।

वाणासुर : तुम्हारा जैसा गधा का सिर है वैसी ही तुम्हारी बातें भी हैं। मूर्ख, यह स्वयंवर है, युद्धभूमि नहीं।

रावण : क्या कहा ?

शाहजो : अरे भाई, यह लीला-संवाद हैं, बुरा मत मानना।

नेताई : हमें जान-बूझकर परस्पर लड़ाया जा रहा है। हमारी एकता खतरे में है।

मसखरा : अरे रावण, अपना संवाद बोल !

रावण : क्या कहा ?

वाणासुर : यह स्वयंवर है, युद्धभूमि नहीं।

रावण : तो फिर कभी देखा जायेगा।

वाणासुर : देखा कब जायेगा ? फैसला तो धनुष के हाथ है। अपना पराक्रम क्यों नहीं दिखाते ?

रावण : पहले तुम !

वाणासुर : पहले आप।

रावण : नहीं।

वाणासुर : जी नहीं।

रावण : नहीं तो पछताओगे।

वाणासुर : यह मेरे गुरु का धनुष है। मैं इसके उठाने का अधिकारी नहीं। सीता माता के समान है।

नेताई : अबे बनिया वक्काल, बिमला माता समान है और रामगुलाम ?

(संगीत। यात्रा-गान और यात्रा)

आज मोहिं रघुवर की सुधि आयी।
आगे-आगे राम चलत हैं
पीछे लछिमन भाई।
ताके पीछे मातु जानकी
विपदा कही न जायी।
आज मोहिं रघुवर की सुधि आयी।

पाँचवाँ दृश्य

रामगुलाम : हाकिमजी, मेरे पिता के मरते ही इन्होंने मेरी सारी जमीन बेदखल कर ली। माई और दीदी खाने के लिए मोहताज। मैं भागकर कलकत्ता गया।

गपोले : चकबन्दी के हाकिम के पास इतनी फुर्सत नहीं, तेरी बकवास सुनने के लिए।

हाकिम : फुर्सत है। बोलो, जरा नमक-मिर्च कम लगाओ।

रामगुलाम : कलकत्ता से लौटकर देखा—मेरे खेत में इनके हल चल रहे हैं। अपने हक के लिए मैंने विरोध किया। पंचायत बुलायी। पंचायत में जो मेरे हक के लिए बोला उस पर लाठी चल गयी।

चीलरसिंह : ऐसे ही अगर तेरा हक छीन रहा था तो मुकदमा क्यों नहीं किया?

हाकिम : क्या मजाक करते हो, यह और मुकदमा। अदालत, कचहरी, आप लोगों के लिए है।

नेताई : ठीक है। अपने हक के लिए कोई कागज-पत्तर है?

रामगुलाम : कैसा कागज-पत्तर! यही मुन्शीजी और रमई काका मेरे गवाह हैं।

(सरजू आते हैं।)

शाहजी : लो, यह भी सूँघते-सूँघते पहुँच गये। इन्हें पहचान रखें, हुजूर। यह इसके गुरु हैं। यह जितना ऊपर हैं, उतना ही जमीन के नीचे हैं। पूरा देश घूमे हैं, पैदल। अँग्रेजी, फारसी, संस्कृत पढ़ते-बोलते हैं। जितने ज्ञानी उतने ही साहसी।

सरजू : अरे, तुम पहचानो, उन्हें क्या कहते हो? वे कोई इस गाँव के हैं। तुम हमें पहचानो—जैसे तुम्हारे बाप-दादा पहचानते थे। वे होते तो गाँव-जवार का यह हाल न होता। वे न्याय-पुरुष थे।

नेताई : देखिये साहब, हम लोगों के पास इतना फजूल का वक्त नहीं है। कुल पाँच दिन रह गये हैं चुनाव के—हमें बहुत काम करने हैं।

हाकिम : आप लोग जा सकते हैं।

नेताई : पर मामला तो हमारा है।

हाकिम : आपका नहीं, रामगुलाम का है।

चीलरसिंह : रामगुलाम के पास अपने हक को साबित करने के लिए कोई प्रमाण नहीं है।

हाकिम : गवाह तो हैं।

नेताई : देखिये हाकिम साहब, इलेक्शन-दौरे पर मन्त्रीजी आ रहे हैं—हमारे पास इतना वक्त नहीं है।

हाकिम : आप इलेक्शन का दबाव मेरे ऊपर डालना चाहते हैं? इलेक्शन अलग है। चकबन्दी उससे

अलग है।

नेताई : आप समझते नहीं। इलेक्शन का असर हर चीज पर है। हर चीज का असर इलेक्शन पर है।

हाकिम : मुझे मेरा काम करने दीजिये।

नेताई : हमें भी अपना काम करने दीजिये।

हाकिम : मैं सरकारी मुलाजिम हूँ।

नेताई : सरकार हम बनाते हैं।

हाकिम : नहीं, सरकार ये बनाते हैं—जिन्हें सरकार कोई फायदा नहीं पहुँचा पाती। बीच ही में तुम लोग सब डकार जाते हो।

नेताई : आपको हमारी ताकत का पता नहीं।

चोलरसिंह : बहुत देखे हैं, ऐसे हाकिम-अफसर।

हाकिम : चपरासी !

चपरासी : जी साहब !

हाकिम : यह लो चिट्ठी। थाने जाओ। पुलिस-ताकत के साथ फ़ौरन आयें थानेदार साहब। जाओ।

शाहजी : अरे साहब, आप तो नाराज हो गये। मैं इनकी तरफ से क्षमा चाहता हूँ।

हाकिम : तुम इनकी तरफ से कमाई भी करते हो।

नेताई : सर, मेरे मुँह से निकल गया—इलेक्शन के काम से दिमाग घूम गया।

चोलरसिंह : सर, तीन रात से हम सो नहीं पाये हैं—एक-से-एक बड़े नेता इधर दौरा कर रहे हैं।

हाकिम : आप किस पार्टी के लिए काम कर रहे हैं ? आप

किस दल के हैं ?

चोलरसिंह : हम निर्दलीय हैं, सर ! आपसे क्या परदा, जिधर हवा देखते हैं उधर...ही ही ही !

हाकिम : तभी आप लोग केवल पुलिस की ताकत से डरते हैं।

चोलरसिंह : फिलहाल !

हाकिम : क्यों, रामगुलाम ?

रामगुलाम : हाँ साहब, आजादी तो इन्हीं लोगों की है।

हाकिम : याद रखिये—यह आज़ादी आप ही लोगों को पागल बना देगी। आज़ादी दो तरह की नहीं होती—एक तुम्हारी दूसरी रामगुलाम की, यह नहीं है आज़ादी। यह भय है—ताकत का भय। एक नहीं, जब सब एक-दूसरे से निर्भय होंगे, तब आयेगी नहीं, होगी आज़ादी। वहाँ होगा स्वराज्य। हम पर दूसरे का राज नहीं—यह तो आजादी है—अपने पर अपना राज्य, स्वराज्य....सब अपने अधीन, स्वाधीन।

नेताई : बकवास !

चोलरसिंह : उसके लिए जन-जागरण चाहिए।

सरजू : जैसे आप लोग जगे हैं वैसे ?

नेताई : हाँ, क्यों नहीं ?

सरजू : आप लोगों की तरह अगर सब जग जायेंगे—अभी तो गाँव में तीन पार्टियाँ हैं, तब कम-से-कम बहत्तर पार्टियाँ बनेंगी। आप कुल छः ही आदमी हैं।

रमई : फिर तो हर गाँव में पुलिस-थाना खुले, जभी काम चले। यही समझते हो कि आप लोग जगे हुए हैं?

नेताई : जरूर!

सरजू : घोर अन्धकार की निद्रा में सोये हुए हो। जगी हैं केवल तुम्हारी इच्छाएँ, भय, क्रोध, अहंकार —और इसी पर सारी भ्रष्ट राजनीति खड़ी है। ताकि कहीं असली राजनीति न शुरू हो—तभी सबकी आज़ादी अलग-अलग है—क्योंकि सबकी इच्छाएँ, भय, क्रोध, अहंकार अलग-अलग हैं।

शाहजी : यह तो ऐसे बकते हैं, साहब, एक विनती करूँ? हमारे मन्त्रीजी अच्छा नहीं बोल पाते—आप चुनाव-भाषण दीजिये—आपको मोटी रकम मिलेगी, वह मेरी जिम्मेदारी है। अरे, आप हँस रहे हैं। क्या रखा है इस नौकरी में—गाँव में धूल फाँक रहे हैं बेमतलब।

नेताई : ठीक बात है, सर।

शाहजी : सरकार, जरा इधर आ जाइये। एक बहुत जरूरी बात है। आप तो ऊँचे विचारों के हैं।

(दोनों अलग जाकर)

यह योजना हमने बतायी थी मन्त्रीजी से कि चकबन्दी के समय इलेक्शन हो। इलेक्शन फंड में रुपयों की कमी नहीं रहेगी। चकबन्दी के दबाव में सौ फीसदी वोट भी मिलेंगे। आम-

के-आम गुठली के दाम।

हाकिम : तो मैं क्या करूँ?

शाहजी : आप ही के ऊपर तो सारा दारमदार है। आप अपनी मेहनत माँगोगे तो ये सूद पर मुझसे रुपये कर्ज लेंगे। कर्जदार होंगे तो इन पर हमारा दबाव होगा। जिसका दबाव उसी का चुनाव, आप तो इतने समझदार हैं—थोड़ा कहना बहुत समझना।

हाकिम : तो यह विष इतने नीचे तक फैल चुका है। सुनो, सरजू, रमई, रामगुलाम, इसने जो अभी मुझसे कहा है—वह भयंकर है। पर मेरे लिए घी-शक्कर है।

नेताई : सावधान!

शाहजी : साहब, मेरी गरदन पर छुरी मत चलाइये। मैं बेकसूर हूँ—लाचार हूँ। मुझसे भूल हो गयी।

नेताई : इस शत्रु से बात क्यों की।

सरजू : तुम लोग खुद हो अपने शत्रु। जो विष तुम लोगों में लगा है, वह इस माटी में न लग जाये, यही प्रार्थना है ग्राम-देवता से। जाओ, मेरे खिलाफ जो इच्छा हो करो, मैं गाँव-गाँव की धूल अपने माथे पर लेकर इन सबसे कहूँगा—यह नहीं है आजादी। जागो, जानकी इस भूमि से पैदा हो चुकी है। उठाओ शिव-धनुष, राम, बेधो इस अंधकार को। जागो, ग्राम-देवता! जागो!!

हाकिम : चुप रहो। जागो-जागो। खुद जगे हो? जब से आज़ादी मिली, कितना माल बटोरा? कितनी ताकत हासिल की? कुछ नहीं न, तभी इतनी ऊँची-ऊँची बातें कर रहे हो।

सरजू : तुम भी इन्हीं के आदमी निकले।

हाकिम : हम तो सरकारी आदमी हैं।

सरजू : हमारा कौन है?

हाकिम : आँख खोलकर देखते क्यों नहीं, निर्बल का कोई नहीं होता। भजन गाते रहो—निर्बल के बल राम। चलो भाई, लंच का वक्त हो गया। अँग्रेज़ चले गये, लंच और डिनर हमें दे गये।

(यात्रा चलती है। यात्रा-गान)

बम भोले शिव की बरात।
बम भोले शिव की बरात॥
कोई अंजर कोई पंजर
ऐसी अँधियारी रात।
बम भोले शिव की बरात॥
हिनहिनावैं गनगनावैं
भूत प्रेत पिसाच।
बम भोले शिव की बरात॥

छठा दृश्य

मसखरा : धनुष-यज्ञ में, इस विघ्न के लिए हम क्षमा चाहते हैं। विघ्न आया है जाने के लिए। जब तक हमारे भीतर विघ्न-विदारक भगवान विराजमान हैं तब तक ये सारे विघ्न नाशवान हैं। बजाओ संगीत। गाओ प्रभु का गीत।

(संगीत-गायन उभरता है।)

आज दिवस लेऊँ बलिहारा
मेरे घर आया राम का प्यारा।
आँगन कानन भवन भयो पावन
हरिजन बैठे हरिजस गावन।
कथा कहे अरु अरथ विचारे
आप तरे औरन को तारें।

नेताई : बन्द करो यह पोपलीला। यहाँ न कोई रावण है, न राम है।

मसखरा : है, तभी तो कह रहे हो, नहीं है।

रमई : भाई, धीरज से काम लो। नेताईजी, आप राम का पार्ट करना चाहते थे। आइये, बनिये राम। आइये! लीला करने का मतलब ही यही है कि कोई भी राम बन सकता है। राम का अवतार त्रेता युग में हुआ था यह तो कथा है, पर सच्चाई

यह है कि राम का अवतार आज भी होता है। जो चाहे वह राम हो सकता है।

नेताई : इसका मतलब क्या है ?

होरा : तुम्हारी राजनीति का मतलब क्या है ?

गपोले : हे लक्ष्मण, चुप रहो, तुमसे मैं निपटूँगा।

सरजू : देखो नेताईजी, पहले यहाँ कितने धूमधाम से रामलीला होती थी। सारा गाँव-जवार इससे मिलकर एक हो जाता था। पर उन्नीस सौ बासठ में ग्राम-पंचायत के चुनाव के नाम पर ऊपर से जो भ्रष्ट राजनीति यहाँ आयी, उस दिन से रामलीला बन्द, कथा-भागवत, गाना-बजाना, अखाड़ा-कबड्डी—सब खतम। सबका एक साथ बैठना-बोलना बन्द। तब से जो-जो इस गाँव-जवार में हुआ, उसे याद करने से क्या फायदा, हमने यही पाया कि कुछ ऐसा करें कि उस बहाने हम एक साथ बैठें, बोलें। ऐसा हो कुछ कि जिसमें सबकी साझेदारी हो।

नेताई : ये मेरे दुश्मन हैं।

सरजू : पर तुम्हारे ही तो हैं।

मसखरा : ये बातें यहाँ कहने की नहीं हैं। रामलीला में देरी हो रही है।

सरजू : पिछले इकतीस सालों से ये बातें कहने-सुनने का समय और स्थान कहाँ मिला ? सब अपने-अपने घरों में घुस गये।

गपोले : भाई, लेक्चर बन्द करो। देरी हो रही है।

नेताई : तेरी क्या राय है ?

गपोले : वाह-वाह ! आज मुझसे राय माँग रहे हैं। ऐसा है नेताजी, आकर जरा जनता में बैठ जाओ और देखो मेरा पार्ट।

गड़बड़सिंह : पता चला जायेगा कि नेता के बारे में जनता क्या सोचती है।

नेताई : हुअँ ! जनता कायर है।

मसखरा : तभी तो नेता महाकायर है। सबूत चाहिए ?

नेताई : क्या कहा ?

मसखरा : मैंने कुछ नहीं कहा। उन्होंने कहा। उन्होंने... नहीं नहीं, उन्होंने।

नेताई : सबूत मैं क्या दूँ, अवसर स्वयं ही दे देगा। कुछ ही क्षणों में यह धनुष उठेगा। पुराना धनुष है, इसे तोड़ना क्या बात है ? सैकड़ों जहाँ तोड़ डाले इसकी क्या औकात है ?

मसखरा : धन्य है, महाराज ! पार्ट अच्छा कर रहे हैं। जमे रहिये। अरे ! आप लोग जा रहे हैं।

(**रावण और बाणासुर जाते हैं।**)

चलो भाई, संकट टला, संगीत मारो।

(संगीत)

जथा सुअंजन अंजि दृग, साधन सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सैलवान, भूतल भूमि विधान॥

मसखरा : सावधान, अब आते हैं कश्मीर के राजा।

(**कश्मीर के राजा धनुष उठाने में असफल होते हैं।**)

क० राजा : इस धनुष में क्या रखा है ? नहीं उठाता इसे।

मसखरा : क्या ?

क० राजा : नहीं उठाता, मेरी मरजी।

मसखरा : कई बार उछली लोमड़ी, पर जब अंगूर हाथ न आये, तब बोली मुँह बनाकर—खट्टे हैं, अंगूर कौन खाये !

जनक : हाय, इस धनुष को अब कोई नहीं उठायेगा, हाय यह दुख और दारिद्रय सहा नहीं जाता। क्या ऐसा कोई पुरुष नहीं ?

अब जनि कोउ भाखे मखमानी
वीर विहीन मही मैं जानी।
तजहुँ आस निज-निज गृह जाहू
लिखा न विधि वैदेहि विवाहू।

लक्ष्मण :

सुनहु भानुकुल पंकज भानू
कहो सुभाउ न कछु अभिमानू।
जो तुम्हार अनुशासन पाऊँ,
कंदुक सो ब्रह्माण्ड उठाऊँ।
तोरो छत्रक दंड जिमि तब प्रताप बल नाथ।
जो न करूँ प्रभु-पद-सपथ, कर न धरूँ धनु हाथ।।

जनक : जवानों में इतनी ताकत है अभी, क्या इसे मैं मान लूं ? जो कहते हैं कर सकेंगे भी, क्या इसे सच मान लूं।

लक्ष्मण : जनक, देख लें कि अभी वीरता है जवान में।
दम ही क्या है उस पुरानी कमान में।

क्षण-भर में यह धनुष भू पर होगा कि आसमान में।
चुटकियों में उठा लूँ और तोड़ूँ आनबान में।

गपोले : (सहसा) वाह बेटा लक्ष्मण चन्द।
अभी करता हूँ तेरी बोलती बन्द।

मसखरा : यह क्या असभ्यता है—जब देखो तब बीच में टपक पड़ते हो।

गपोले : क्या कहा, असभ्यता ? नेताजी, जरा बताइये तो सही, क्या मतलब होता है असभ्यता का, फिर मैं बताऊँ।

नेताई : असभ्यता—अ माने आ, और सभ्यता माने सभ्यता—मतलब सभ्यता आ। यह सरासर गाली है। नहीं, नहीं, थोड़ा विचार करना होगा।

(यात्रा और गान)

बम भोले शिव की बरात।
बम भोले शिव की बरात ॥

सातवाँ दृश्य

(मन्त्रीजी और लोग।)

नेताई : अरे मन्त्रीजी आये हैं, कुछ बैठने को लाओगे या टुकुर-टुकुर मुँह देखोगे।

शाहजी : महाराजजी, आप मेरे दरवाजे पर बैठें, वहाँ सारा प्रबन्ध है।

हीरा : मन्त्रीजी जनता के हैं। जनता में आये हैं। बैठिये, श्रीमानजी।

(लखपतिया की पीठ पर बैठना।)

नेताई : हाँ, बोलो, किसे क्या शिकायत है? किसे किस चीज़ की ज़रूरत है?

सरजू : जिनके ले आने से आप यहाँ आये हैं उनके सामने कुछ कहने की किसी को कोई हिम्मत नहीं है।

मन्त्री : वाह-वाह, कितनी अच्छी भाषा है। अनुप्रास की कितनी सुन्दर छटा है—'कुछ कहने की किसी को कोई'! वाह-वाह!

नेताई : कहने की हिम्मत नहीं है तो लिखकर दे दो।

मन्त्री : हाँ, सुन्दर सुझाव है।

नेताई : हाँ, हाँ, सुन्दर सुझाव है।

शाहजी : कहो तो हम लोग हट जायें।

गपोले : या गाँव छोड़कर चले जायें।

मन्त्री : कितने उच्च विचार हैं!

शाहजी : देखिये, आप लोग थोड़ा धीरे बोलिये, मन्त्रीजी बहुत कोमल स्वभाव के हैं। इन्हें सात बार दिल के दौरे पड़ चुके हैं। दिल माने 'हार्ट'।

रमई : सबसे गम्भीर दुख है रामगुलाम का। सबसे अधिक अन्याय इस पर हुआ है। और यही चुप है।

मन्त्री : अरे, आज़ाद देश के नागरिक हो। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

रामगुलाम : क्या कहा साहेब, कुछ समझ में नहीं आया।

मन्त्री : ओह भाषा क्लिष्ट हो गयी—अरे, अन्याय के खिलाफ बोलो, बोलो-बोलो। आवाज़ बुलन्द करो। अब भी मेरी भाषा क्लिष्ट है?

(रामगुलाम चुप है।)

यह क्या कहना चाहता है? ओह, बहुत कम बोलता है।

सरजू : गाँव में सबसे सीधा, चरित्रवान पर सबसे ज्यादा अन्याय का शिकार यही है। चोरी करावें ये, माल बेचें ये, और जेल काटे रामगुलाम।

मन्त्री : तो रामगुलाम राजनीतिक में क्यों नहीं आता? जेल और राजनीति का गहरा सम्बन्ध है।

सरजू : हुजूर, क्या कहा?

मन्त्री : आप लोग ज़रा उधर हट जाइये। मैं इन लोगों से कुछ ज़रूरी बात...।

(नेताई, शाहजी, गपोले एक ओर हट जाते हैं।)

बात यह है कि किसी और को अब अपना आदमी बनाना चाहता हूँ। रामगुलाम कैसा आदमी है? इसकी जाति?

सरजू : पिछड़ी हुई।

मन्त्री : इसकी ताक़त?

सरजू : सच्चाई, सचरित्रता, आत्मविश्वास...।

मन्त्री : बेकार वक्त बरबाद मत करो। इसके साथ इस जवार के कितने गुंडे, डाकू बदमाश, पैसे वाले, और क़ातिल हैं?

सरजू : कोई नहीं, कोई नहीं।

मन्त्री : फिर बेकार, बेमतलब है रामगुलाम। मुझे इस क्षेत्र से एक ऐसे नवयुवक की ज़रूरत है, बल्कि बड़ी बेसब्री से तलाश है जिसके पास ताक़त हो —लोगों को डराने वाली, ख़रीदने वाली ताक़त। मैं उसे एम० एल० ए० बनाऊँगा, अपना आदमी।

लखपतिया : (उछल पड़ता है) मैं हूँ, सर! आप मेरे ऊपर हाथ रख देंगे तो मेरी ताक़त का अन्त नहीं रहेगा। मैं आपकी तन-मन-धन से सेवा करूँगा। जो आप इशारा कर देंगे, वही होगा।

मन्त्री : शाबाश!

लखपतिया : मैं एक-एक को दिखा दूँगा अपनी ताक़त। नेताई का कतल, शाहजी को जेल, गपोले को भीख मँगा दूँगा। यहाँ से दिल्ली तक डंका न बजा दूँ तो मेरा नाम लखपतिया नहीं। सर, मैं हाई स्कूल में सात बार फेल। चाकू, छुरा, पिस्तौल, कट्टा चलाने में होशियार, बम बनाने में इक्सपर्ट। हड़ताल, घेराव, मारपीट, चोरी-चंडाली में इधर कोई मेरा सानी नहीं। बस, एक बार आपसे टिकट मिल जाये।

मन्त्री : नहीं-नहीं, मुझे ऐसा आदमी नहीं चाहिए।

लखपतिया : क्या?

मन्त्री : मुझे ऐसा चाहिए जो यहाँ से प्रदेश को राजधानी तक ही सीमित रहे। तुम तो दिल्ली तक डंका बजाने वाले हो। ऐसा नहीं चाहिए मुझे।

लखपतिया : सर, ऐसी कौन-सी कमी है मुझमें?

मन्त्री : तुम ज़रूरत से ज़्यादा आत्मसम्मानहीन आदमी हो—यह ख़तरनाक है मेरे लिए। चालीस वर्षों से यही मेरा जीवन रहा है। अब आप लोग इधर आ सकते हैं। हाँ, तो इस गाँव-जवार का असली मामला क्या है? मेरे पास वक़्त नहीं है। कहो, बेखटक कहो।

कालू : आइये सर, आरामकुर्सी पर। मुझे टिकट दीजिये, फिर देखिये कमाल। टेढ़ी टोपी लाल रूमाल।

मन्त्री : मिलते-जुलते रहना, देखूँगा।

कालू : तो बैठिये।

(कालू की पीठ पर बैठकर)

मन्त्री : भाई, कोई विमला नाम की लड़की है।

सरजू : यह है बिमला। रामगुलाम ने इसे अपने जीवन में शरण दिया—यही उसका अपराध हो गया।

रामगुलाम : नहीं, बिमला ने मुझे अपने जीवन में शरण दिया।

मन्त्री : विचार उत्तम हैं।

सरजू : कहीं कुछ भी इनकी मरजी के खिलाफ होता है, ये उसे नष्ट करने की कोशिश करते हैं।

मन्त्री : भाई, इस कुर्सी में खटमल बहुत हैं। दूसरी लाओ।

गड़बड़सिंह : कुर्सी को झाड़े देते हैं, साहेब। (झाड़ता है) खटमल झड़ गये। बैठिये, श्रीमानजी।

मन्त्री : (बैठते हुए) यह बहुत पिछड़ा हुआ इलाक़ा है।

नेताई : कोई डेवलेपमेंट ग्रांट हो जाये, सर।

मन्त्री : बढ़िया स्कीम बनाकर दो, फ़र्स्ट क्लास।

शाहजी : इलाइची लीजिये, सर। (खाते हैं।) पान-सिगरेट कुछ भी नहीं हाँ, सादा जीवन उच्च विचार। महान आत्मा। जी, सर।

मन्त्री : हाँ, तो क्या कह रहे थे आप? ज़रा नोट करते चलना जी। बड़ी उमस है।

(**चीलरसिंह और नेउर धोती से हवा करते हैं।**)

सरजू : थाना-ओ-इजलास से मिलकर अब ये लोग भयंकर केस चलाने की स्कीम बना रहे हैं बिमला और रामगुलाम पर।

मन्त्री : यह बिमलादेवी कौन हैं? बार-बार यह नाम सुन रहा हूँ।

बिमला : मैं हूँ बिमला। रामगुलाम को साथ लिये हुए एक बार आपके बँगले पर मिली थी। इस गाँव-जवार की पूरी बात मैंने बतायी थी। हमने आपको एक आवेदन-पत्र भी दिया था।

मन्त्री : आवेदन-पत्र अँग्रेज़ी में था या हिन्दी में?

रामगुलाम : हिन्दी में।

मन्त्री : (उठते हुए) फिर बताइये, मेरी क्या है ग़लती? आवेदन-पत्र जब हिन्दी में हो तो मैं क्या कर सकता हूँ? मेरी लाचारी आप लोग नहीं जानते। आख़िर कोई तौर-तरीक़ा होता है। पूछता हूँ—उस आवेदन-पत्र पर तुम्हारे एम० एल० ए०, एम० पी० के दस्तखत थे? बोलो, जवाब दो।

बिमला : (**रामगुलाम को झकझोरती हुई**) बोलो, बोलते क्यों नहीं? बोलो। बोलते क्यों नहीं? जवाब दो।

(**रो पड़ती है।**)

रामगुलाम : रो नहीं, जिसे यहाँ न्याय नहीं मिला, उसे स्वर्ग में न्याय मिलेगा—यह सोचते-सोचते अब यहाँ पहुँच चुका हूँ—वह स्वर्ग इन्हीं का झूठ है। मैं इनसे क्या बोलूँ? इन्हें क्या जवाब दूँ? जवाब तो इन्हें देना था। उल्टे मुझसे जवाबदेही! भगवान ने किसी को पीठ पीछे आँख नहीं दी। सब कुछ सामने दिख रहा है। मैं मुड़-मुड़कर इन्हीं तीस-पैंतीस वर्षों को ही देखता रहा।

तभी हमारी यह दशा हुई। इस गाँव-जवार का सत्यानाश हुआ। एक-एक कर सबके धनुष हाथ से छूटते चले गये। यह सम्पूर्ण धनुष टुकड़े-टुकड़े हो गया। कोई उसे उठाकर यह कहने वाला नहीं था, यह सुन्दर विराट धनुष हमारे पुरखों की कठिन तपस्या और त्याग से बना है—इसे बाँटने, तोड़ने, अपवित्र करने का किसी को कोई अधिकार नहीं। एक ने कहा तो उसे सबके सामने गोली मार दी। उसके मुँह से निकला—हे राम! दूसरे ने कहा तो उस यात्री को गला घोंटकर मार दिया—जिसके मुँह से निकला—यह मेरा नहीं, सबका है, इसलिए सम्पूर्ण राष्ट्र का है। कुछ नहीं होते तीस-पैंतीस, पचास-सौ वर्ष—इस भारत माँ के लिए। वह फिर हमें शंकर-पिनाक देगी।

सरजू : वह पिनाक ही तो टूटा हुआ है जातियों में, वर्गों-सम्प्रदायों में। तरह-तरह से तोड़ा है, ताकि इसे कोई उठा न सके इनके खिलाफ।

मन्त्री : भाई, ऐसी बात क्यों करते हो? मेरा तो दिल धड़कने लगा। मुझे अस्पताल ले चलो फ़ौरन-फ़ौरन!

(लोग उन्हें कंधे पर उठाकर ले जाते हैं।)

रामगुलाम : धर्म अतीत में नहीं, केवल वर्तमान में है। यह शिव-धनुष हमारा वर्तमान है। अगर हमने इसे अनुभव नहीं किया तो हम अधर्म जीवन का

बोझ ढोते हैं।

सरजू : फेंक दो अपने भूत को। मृत सत्ता को जब तक अपने सीने से चिपकाये रखोगे, सत्य नहीं पाओगे।

बिमला : क्या है सत्य?

सरजू : जो तुम्हारा है।

बिमला : क्या?

सरजू : तुम्हारा जीवन।

बिमला : भय, क्रोध, हिंसा, नफरत, दुख, निराशा...।

सरजू : यही...यही सत्य है। इन सब चीजों को समझना ही सत्य है। इनके प्रति किसका कैसा आचरण है, यही है जीवन-सत्य...शंकर-धनुष।

बिमला : हे राम!

सरजू : राम कोई दूसरा नहीं है। तुम हो राम, तुम हो। राम मृत सत्ता नहीं है जिसका सिर्फ नाम लिया जाये। राम जीवित सत्ता है। जितना जिया जाये उतना ही है जीवित। निर्बल का बल राम नहीं है। वह है ही नहीं तभी तो निर्बल हैं। अभाव को राम नहीं पूरा कर सकता। अभाव है तभी तो राजनीति भ्रष्ट है। अभाव है तभी तो इतनी दीनता है। राजनीति दीनता और अभाव से नहीं पैदा होगी। वह पैदा होगी एक-एक के आत्मबल से। एक-एक मिलकर जितने जुड़ेंगे—उतनी गुना शक्ति बढ़ेगी। जितनी शक्ति बढ़ेगी, पीढ़ियों से चले

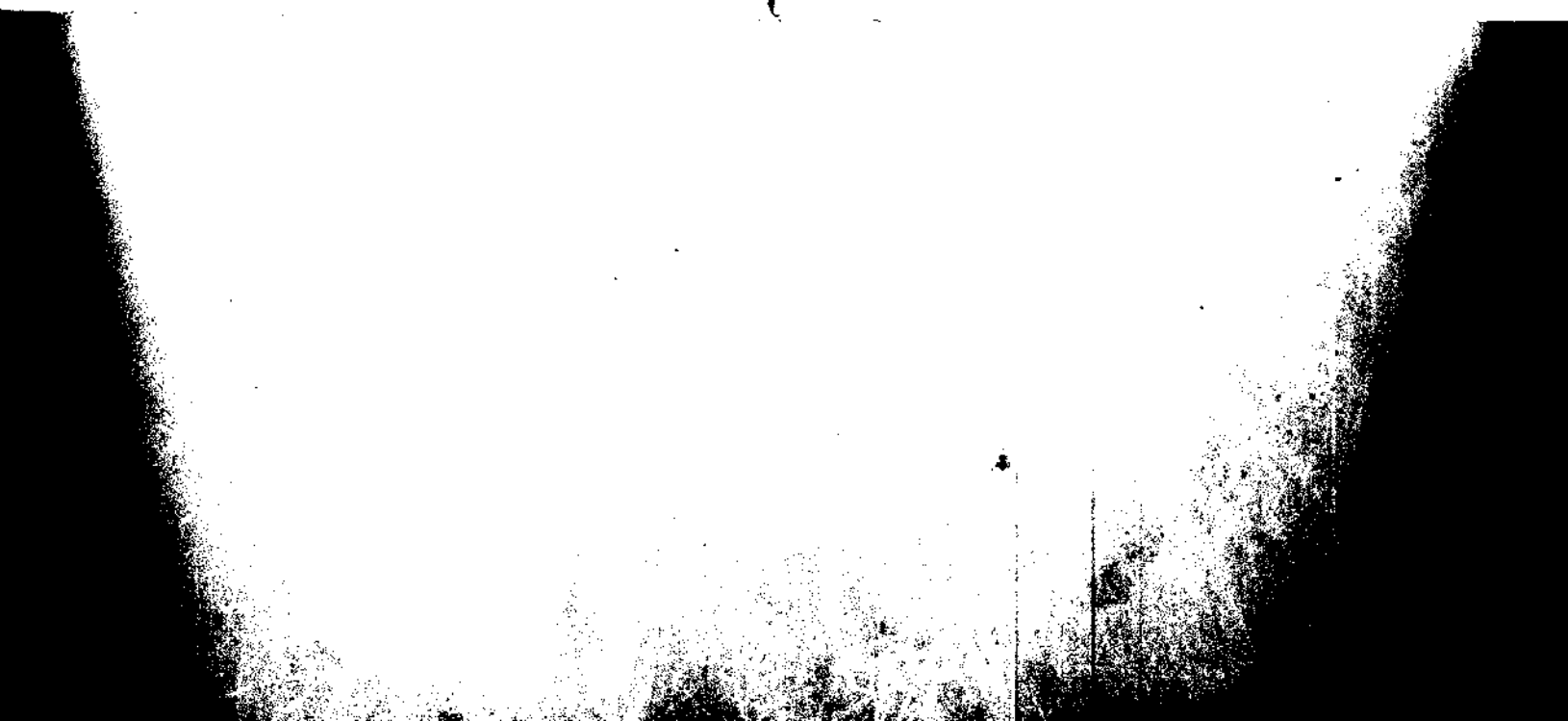

आ रहे पाखंड और झूठ से यह समाज मुक्त होगा।

(यात्रा और यात्रा-गान)

जननी बिनु राम अब ना अवध में रहिबै
राम बिना मोरी सूनी अयोध्या
लछिमन बिन ठकुरायी
सीता बिना मोरी सूनी महलिया
के अब दियना जलायी
जननी बिनु राम अब ना अवध में रहिबै ॥

आठवाँ दृश्य

(संगीत उभरता है। गायक गाते हैं।)

देवि तजिअ संसय अस जानी,
भंजब धनुष राम सुनु रानी ॥
सखि बचन सुनि भै परतीती,
मिटा विषाद् बढ़ी अति प्रीती ॥
तब रामहिं विलोकि बैदेही,
सभय हृदय विनवति जेहि तेही ॥

मसखरा : हाँ तो, कोई है माई का लाल, धनुष उठाने वाला? हो तो आ जाये—नहीं तो कहते फिरोगे—धनुषयज्ञ नहीं, नाटक है।

विश्वामित्र : उठहु राम भंजहु भव चापा।
मेटहु तात जनक परितापा ॥

गपोले : रमई काका का परितापा।

मसखरा : फिर तुम बोले।

गपोले : भाई, मुँह से निकल गया।

रमई : यह तुम्हारी आदत हो गयी है—जबान पर कोई लगाम नहीं। अगर फिर बोले, तो यहाँ से बाहर निकाल दूँगा। तुम लोग अपने-आपको समझते क्या हो?

नेताई : अपने-आपको क्या तानाशाह समझते हो कि दूसरे की जबान पर ताला लगा दो !

सरजू : आज़ादी, तानाशाही—ये तुम्हारे शब्द है, शब्द दो, अर्थ एक।

नेताई : तो उसे बोलने क्यों नहीं देते ?

सरजू : बोलने के लिए तुम्हारे पागलखाने काफी हैं। यहाँ रामलीला हो रही है। बार-बार तुम लोग विघ्न डालने की कोशिश करते हो। कभी मौन हो जाया करो, भाई ! बच्चे या पौधे का बढ़ना किसने सुना और देखा है ? सृजन-विकास मौन में है। शोर विनाश का लक्षण है। कुल्हाड़ी मारो, पेड़ में आवाज होगी, होती है न ? पर वृक्ष जब बढ़ता है, फूलता-फलता है तो आवाज नहीं करता, चिल्लाता नहीं कि देखो मैं बढ़ रहा हूँ। मौन होकर देखो...।

नेताई : हअँ। बड़े बने हैं राम-लक्ष्मण ! बचपन में मेरे यहाँ भैंस-गोरु चराते थे।

सरजू : तुम्हारी आँखें तुम्हारी पीठ पर हैं।

नेताई : सब देख रहा हूँ।

सरजू : जिस दिन देखोगे, चुप हो जाओगे।

गपोले : आप बोल रहे हैं !

सरजू : एक धनुष से टूट-टूटकर सबको अलग-अलग आज़ादी—ऐसी आज़ादी पशु की आज़ादी है तभी हमें हाँकने वाला एक चरवाहा चाहिए। हर पाँचवें वर्ष हम वही चरवाहा चुनने को मजबूर होते हैं।

गड़बड़सिंह : हमें भेड़-बकरी किसने बनाया ?

सरजू : तुम वही हो, चाहे जिसने जैसे बनाया—इसे पहले स्वीकार करो, फिर करो अपनी आजादी नहीं, स्वतन्त्रता की बात। सोचते हो स्वतन्त्रता, स्वराज्य, पर चाहते हो स्वतन्त्रता और स्वराज्य तुम्हें कोई लाकर दे दे। कोई थाली में लाकर परोस दे और तुम मजे से खाओ। समझ लो, जनतन्त्र का फल उसी के लिए उतना है, जो जितना शक्तिशाली है। देखो, उस फल-लगे वृक्ष को, जो जितना अपने-आपसे बढ़कर, ऊँचे उछलकर ऊपर जायेगा, उतना ही फल पायेगा। इसमें उस फल-लगे वृक्ष का क्या दोष, इन लोगों के क्या दोष, जिन्हें हम लोग अपना शत्रु समझते हैं ? शत्रु है तुम्हारी निर्बलता, कायरता, अभाव जिसे हम अपनी आज़ादी मानते हैं। जोते हो दरिद्रता, करते हो अन्याय, बात करते हो आजादी की ! राम और कृष्ण ने युद्ध किये हैं, फिर पायी है स्वतन्त्रता। उठाओ यह धनुष, फल प्राप्त करो, राम। नष्ट हो सारी दरिद्रता।

बिमला : यह धनुष टूटा है। अलग-अलग टुकड़ों में बँटा है।

हीरा : सब एक-दूसरे के शत्रु हैं।

रमई : सब दुखी हैं।

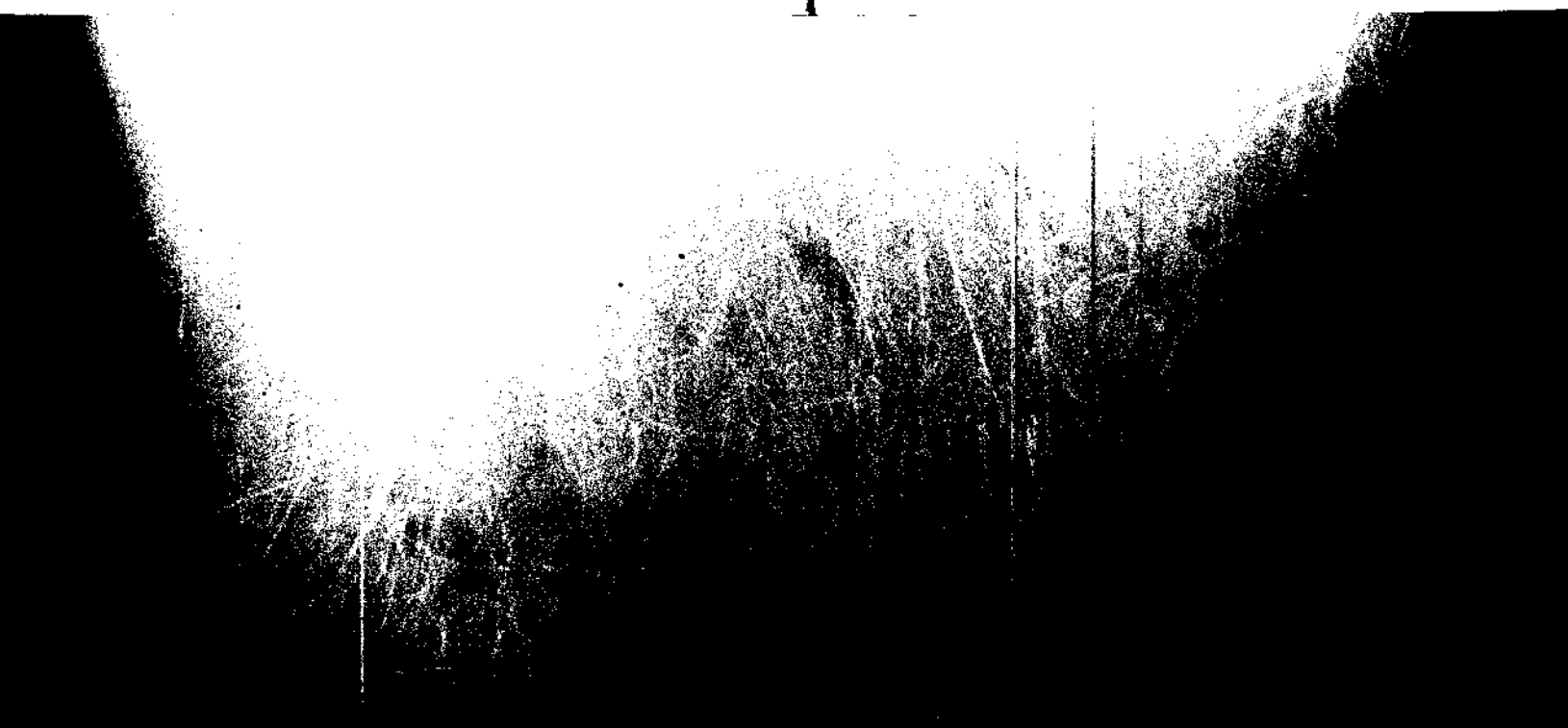

सरजू : क्योंकि सम्पूर्ण धनुष पर नहीं, सम्पूर्ण तो कभी देखा नहीं, धनुष के एक-एक टुकड़े पर सबकी नजर है। जो इसे समेटकर एक सम्पूर्ण धनुष के रूप में देखेगा, वही इसे उठायेगा। वही धनुष पर बाण रखकर बेधेगा इस गहरे अन्धकार को।

विश्वामित्र : उठहु राम भंजउ भव चापा।
मेटहु तात जनक परितापा॥

(संगीत बजने लगता है।)

दीनता से बड़ा और कोई पाप नहीं। अकर्मता से बड़ा और कोई अपराध नहीं। उठो राम, इस धनुष के ऊपर जितना कूड़ा-कचरा, युगों के मलबे का अम्बार लगा है, इसके भीतर हाथ डालकर उठाओ इस विराट पिनाक को, हम सब इसके सत्य और सौन्दर्य को देख सकें।

(राम बढ़कर धनुष उठाते हैं संगीत और गायन उठता है।)

भर भुवन कठोर रव,
रविबाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि,
अहि कोलकुलकलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें,
सकल विकल विचारहीं।

(दोनों सखियाँ गाती हुई जयमाला लिये जानकी को लेकर बढ़ती हैं।)

बड़े-बड़े नैना रामजी के, कजर भल सोहै हो।
रामा कौन तपस्या तुम कीन्हो
सीताजी धना पायो हो॥
बाबा तो पूजिन महादेव मइया गौरा रानी हो।
हमरे रामजी का भाग सीताजी धना पायो हो॥
ए हो सीता कौन तप कीन्ह रमैइया वर पायो हो।
जनम-जनम की तपस्या रमैइया वर पायो हो॥

(जानकी जैसे ही राम के गले में जयमाला डालने लगती हैं, गपोले दौड़कर जानकी को रोकते हैं।)

गपोले : नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता। मेरे जीते जी यह नहीं हो सकता। यह अधर्म है। अत्याचार है।

गड़बड़सिंह : हट जाओ, असली परशुराम तैयार है।

गपोले : सज्जनो, भाइयो और बहनो, असली बात यह है कि रामगुलाम और बिमला एक-दूसरे से शादी कर लेना चाहते थे, वैसे तो शादी करने की हिम्मत न थी, इसीलिए धनुषयज्ञ-लीला रची और इस बहाने शादी कर लेना चाहा। यह अधर्म है।

नेताई : ऐसा नहीं हो सकता।

शाहजी : हाँ।

विश्वामित्र : देखते क्या हो, राम? युद्ध करो। लक्ष्मण, चलाओ धनुष। जहाँ ज्ञान-विज्ञान में, विश्वास-अन्धविश्वास में, गरीबों-अमीरों में, नीच-ऊँच में इतना अन्तर, इतनी दूरी है, वहाँ परिवर्तन युद्ध के बिना असम्भव है। युद्ध करो। शिव-धनुष पर चढ़ाओ बाण। रावण-वध करो, सीतापति राम। चलाओ शंकर-पिनाक—जानकी स्वतन्त्र हो! जानकी सीता माँ।

(युद्ध-संगीत। राम-रावण-युद्ध। गायन)

दुसह दोष-दुख दलिन, करू देवि दाया।
छमुख हेरंब अंबासि जगदंबिके जै-जै भवानी,
चंड भुजदंड खंडिनि मुन्ड मद भगवानी।
संभु निसंभु क्रोध वारीधि अरिवृन्द वोरे,
देहि माँ देवि विजय जेहि जाया,
दुसह दोष-दुख दलिन, करू देवि दाया॥

(राम द्वारा रावण और लक्ष्मण द्वारा वाणासुर की मृत्यु का अभिनय।)

विश्वामित्र : राम! मृत रावण को उठाओ। लक्ष्मण, वाणासुर को गले से लगाओ। युद्ध, पर घृणा नहीं। विजय, पर अहंकार नहीं।

(राम-रावण, लक्ष्मण-वाणासुर गले मिलते हैं।)

जनक : बेटी, राम के गले में जयमाला डालो।

विश्वामित्र : देवि, जै हो।

(सीता राम के गले में जयमाला डालती है। लोग गले मिलते हैं।)

पहला परसुराम : अरे, यह धनुष तेरे हाथ में! तेरी यह हिम्मत? मेरे गुरु का अपमान!

दूसरा परसुराम : मूर्ख, पता है, यह शंकर-पिनाक है!

लक्ष्मण : इसमें असली परसुराम कौन है?

गपोले : मैं।

गड़बड़सिंह : नहीं, मैं हूँ असली परसुराम।

मसखरा : कौन है असली परसुराम—युद्ध से इसका अभी फैसला हो जाये। मारो! काटो!

(दोनों युद्ध करते हैं। मसखरा लड़ा रहा है।)

विश्वामित्र : टूटो नहीं। जुड़ो, लड़ो नहीं, देखो—देखो, तुम्हें कौन लड़ा रहा है?

गपोले : ओ, यह बात है।

गड़बड़सिंह : आओ, हाथ मिलायें। देखो भाई, यहाँ से वहाँ तक एक पुल बनाना है। सब लोग अपने-अपने कामकाज में लगे हैं तो वह पुल कौन बनवाये? इसके लिए हमें एक जिम्मेदार चरित्रवान आदमी चुनना होगा।

गपोले : यह चुन लिया हमने।

(नेताई को बीच में कर लिया है।)

गड़बड़सिंह : चूँकि हम सबने मिलकर इसे चुना, मतलब हम सबने अपनी-अपनी ताकत से थोड़ी-थोड़ी ताकत निकालकर इसे दे दी। फिर तो यह बहुत ताकतवर हो गया। यह पुल तभी

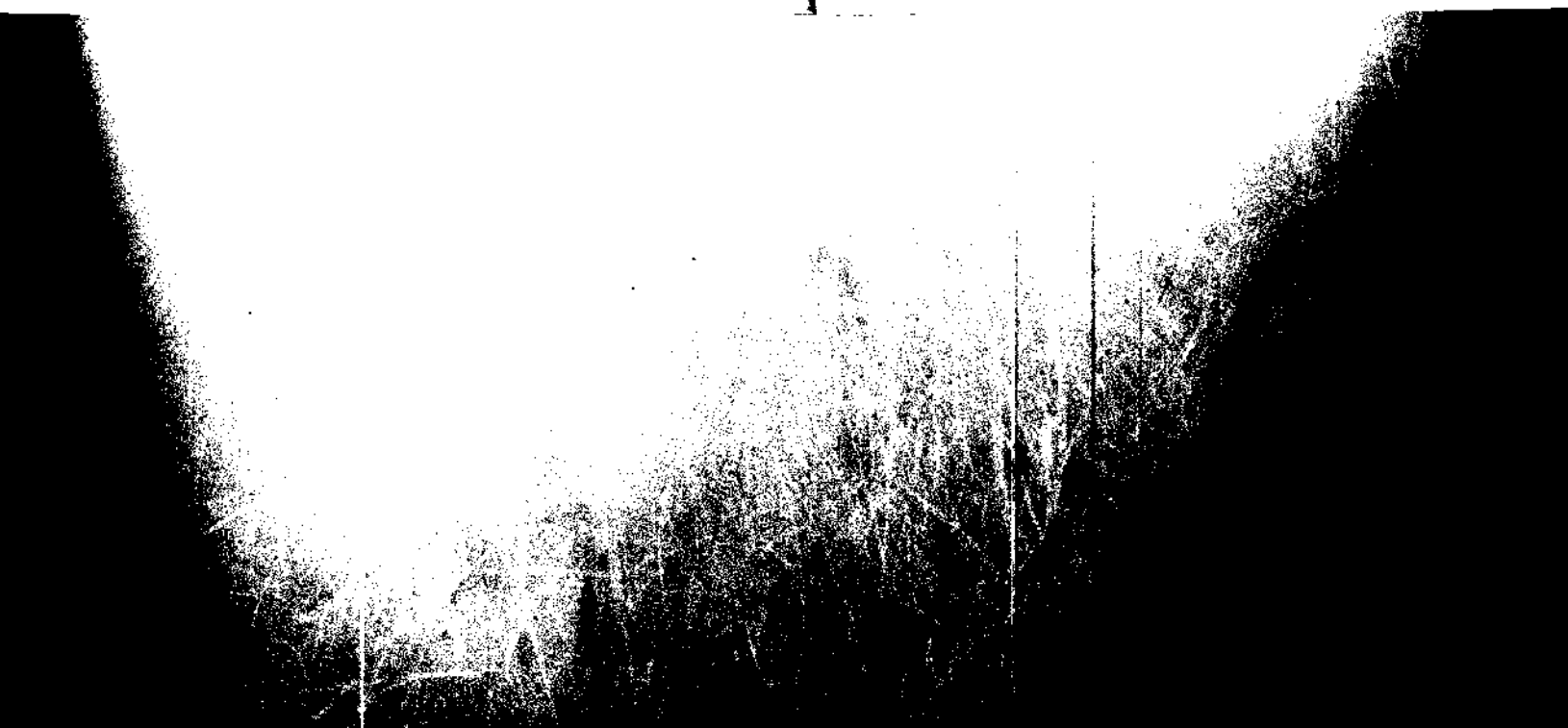

बनवायेगा, जब हम इस पर अंकुश रखेंगे। नहीं तो बिना पीलवान के हाथी देखा है ?

मसखरा : भागो ! भागो ! ऐसा हाथी सब को रौंद डालेगा।

विश्वामित्र : राजनीति पुल बनाती है—जोड़ती है।

नेताई : भ्रष्ट राजनीति सिर्फ़ तोड़ती है।

विश्वामित्र : भ्रष्ट व्यक्ति है, समाज है तो राजनीति भ्रष्ट होगी। राजनीति को गाली मत दो, देखो इसे जोड़ो इसे अपने जन से, धरती से। भारतमाता की जै। सियावर रामचन्द्र की जै। मातु जानकी भारतमाता की जै।

(संगीत। यात्रा और गान)

रघुनाथ तुम्हारे चरित मनोहर,
गावहिं सकल अवधवासी।
अति उदार अवतार मनुज वपु,
धरे ब्रह्म अज अविनासी॥

नौवाँ दृश्य

मसखरा : बस, भाई बस, अब आगे मुझसे नहीं चला जाता। लो, यह टोपी अपनी संभालो, मैं चला अपने घर।

सरजू : अरे, क्या करते हो ? लीला पूरी हो जाने दो।

मसखरा : राम ने धनुष उठा लिया। राम-जानकी का ब्याह हो गया। लीला खतम।

सरजू : यहीं से तो शुरू हुई।

मसखरा : तो सच-सच बात कह दूं ? चाहे किसी को बुरा लगे या भला ? राक्षस दैत्य हमारे देवता को पराजित कर चुका है। शंकर-धनुष उठाने से क्या होगा ? जब तक वह चलाया न जाये।

रामगुलाम : जब उठा है तो चलेगा।

मसखरा : चलेगा तो मैं चल रहा हूँ।

रामगुलाम : अरे-अरे, कहाँ चला ?

मसखरा : देखो भाई, जो बात बहुत जरूरी है उसे जरूर कहना होगा, चाहे कितनी कीमत पड़े। तो कह दूं ?

बिमला : कह दो।

मसखरा : भ्रष्ट, पतित समाज पर, हमारी यह आजादी और प्रजातन्त्र ऐसा है जैसे मेरे सिर पर टोपी। टोपी लगा ला तो जोकर, टोपी उतार लो तो

चोकर।

सरजू : जो ऐसी प्रजा को जन में बदल दे, वही है राम।

(गायन)

राम की लड़ाई आयी
हे भाई, हे भाई।
वोटों से आयी, नोटों से आयी।
गाँधी से आयी, आँधी से आयी॥
अफसर से आयी, नेता से आयी।
ऊपर से आयी, नीचे गिरायी॥

बिमला : लोहु से आयी, आसूँ से आयी॥
शिवजी के धनुही से आयी॥

(सबके हाथ में वही शंकर-धनुष)

सब : कैसी मजेदार बात
मिली हमें आज़ादी आधी रात।

(दूसरी ओर बिमला अपनी सखियों के साथ गाती है।)

तो क्या हुआ
बेला फूले आधी रात।
बेला फूले आधी रात
गजरा मैं के-के गले डालूँ?
राम गले डालूँ, लखन गले डालूँ
बेला फूले आधी रात।

सब : कैसा मजेदार बात
आयी आज़ादी आधी रात।

सखियाँ : बेला फूले आधी रात॥

(परदा)

●●●